सिंधी महाकवि

सामी के श्लोक

• लछमन परसराम हर्दवाणी

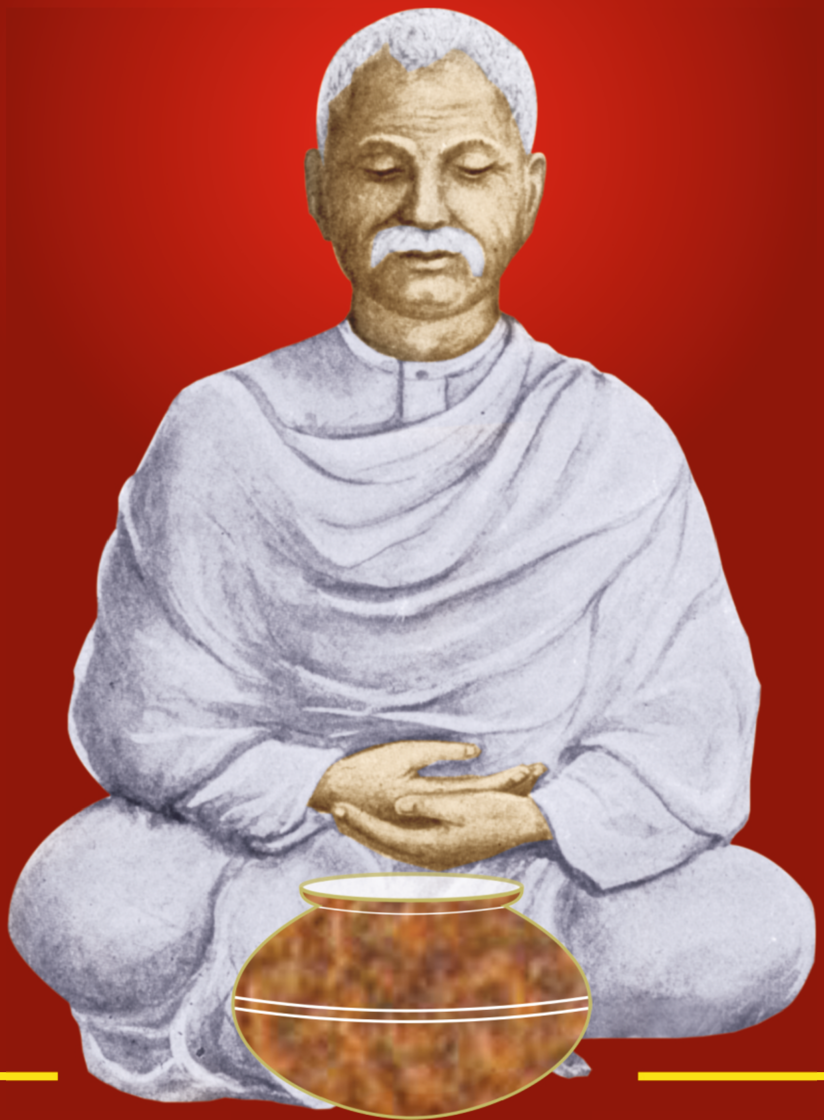

Published by: **Ramani Foundation** Plot No. 118, Ramani Villa, 1st Road, TPS IV, Bandra (W), Mumbai - 50.

सामी के श्लोक

• लछमन परसराम हर्दवाणी

सिंधी महाकवि

सामी के श्लोक

•

प्रो. लछमन परसराम हर्दवाणी

•

प्रकाशक

रामाणी फ़ाउण्डेशन, मुंबई-50

सिंधी महाकवि

सामी के श्लोक

रचायिता

प्रो. लछमन परसराम हर्दवाणी
बी-७०४, विक्टोरिया गार्डन, समीप अग़ाखान पैलेस,
नगर रोड, कल्याणी नगर, पुणे - ४११००६ (महाराष्ट्र)
मो. ९८९०६-९३९३१
ई-मेल : lphardwani@yahoo.com

प्रथम संस्करण, २०१५

आवरण
श्री. विष्णु सिंध्दम एवं प्रो. हर्दवाणी

प्रकाशक
रामाणी फ़ाउण्डेशन
द्वारा के.के. रामाणी एण्ड कंपनी
रामाणी विला, प्लाट नं. ११८, टी.पी.एस. - ४
पहला रास्ता, वान्द्रे (पं.), मुंबई - ४०० ०५० (भारत)
फोन : ०२२ - २६५१६६११
ई-मेल : kkr@ramanilegal.com
वेबसाइट : sindhipoets.com

मुद्रक :
प्रिन्ट फास्ट, मुंबई
फोन : ०९३२२२३९१०७
ई-मेल : printfast@outlook.com
वेबसाइट : www.printfast.in

मूल्य : **अध्यात्म-प्रेम**
(निजी वितरण हेतु प्रकाशित)

Web hosting rights with Author and Publishers

अनुक्रम

1. प्रकाशक की ओर से . . . . (i)
2. आमुख . . . . (iii)
3. महाकवि सामी (संक्षिप्त परिचय)
व्यक्तित्व एवं कृतित्व . . . . (1)
4. सामी वंशावली . . . . (13)
5. सामीजी के 100 श्लोक (अर्थ सहित) . . . . (20)

प्रकाशक की ओर से

महाकवि सामी के श्लोकों की यह पुस्तक आपके हाथों में देते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा हैं। मैं सामी चैनराय लुंड का वंशज हूं। 10 वर्ष पूर्व अपने पिताजी के कहने पर मैंने कुछ सिंधी साहित्यकार मित्रों से संपर्क किया तो मुझे पता लगा कि वे कितने महान दार्शनिक कवि थे। अपनी वंशावली जानने के लिये मैंने हरिद्वार के पण्डितों से संपर्क किया तब उनकी किताबों में उपलब्ध पण्डितों द्वारा तथा हमारे पूर्वजों द्वारा सिंधी व्यावसायिक भाषा हटवाणकी में लिखित टिप्पणियों से कुछ बातें सामने आई। सन् 1868 तक चैनरायजी के सुपुत्र घनश्यामदासजी शिकारपुर सिंध में रहते थे, किन्तु 1882 में वे अमृतसर में बस गये थे। सामी चैनराय के पोते श्री जयरामदास ने एक मंदिर आटा मंडी अमृतसर में एक बिल्डिंग की पहली मंजिल पर बनवाया था जो आज तक विद्यमान है। उस मंदिर के कुछ फोटो हमने इस पुस्तक में भी छपवाये हैं।

कई किताबों में चैनरायजी के पिता का नाम बच्चोमल लिखा गया है किन्तु हरिद्वार कि पण्डितों के बही खातों के अनुसार उनके पिताजी का नाम दाताराम था। जब भी कोई सिंधी हटवाणकी में अपने हस्ताक्षर करता है तो अपना नाम तथा अपने पिताजी का नाम लिखता है। साथ ही पिताजी के नाम के साथ ''आणी'' लगा देता है। उदाहरण के तौर पर मेरा बेटा सुनील यदि हटवाणकी में हस्ताक्षर करेगा तो लिखेगा सही सुनील किशनचंदाणी की। जब चैनरायजी ने हस्ताक्षर किये होंगे तो उन्होंने लिखा होगा हस्ताक्षर चैनराय दातारामाणी के। जो इस भाषा की प्रथा से अवगत नहीं, उनके लिये दातारामाणी शब्द को उपनाम समझना स्वाभाविक ही है। हम भी कुछ वर्ष पूर्व इसी भ्रांति में थे इसलिये हमने अपना उपनाम ''रामाणी'' चुना। इस पुस्तक में हरिद्वार के कागजों की कापी भी है, पाठकों से निवेदन है कि उन कागजों को अच्छी तरह पढ़ कर सही निष्कर्ष निकालें। आप अधिक जानकारी के लिये www.sindhipoets.com वेबसाईट भी देख सकते हैं। मेरा तथा मेरे 2 छोटे भाइयों मुरलीधर तथा गिरधर का स्कूल में हिन्दी माध्यम था। इसलिये हिन्दी के प्रति हमारा झुकाव स्वाभाविक है। हम तीनों की इच्छा थी कि कोई ऐसा व्यक्ति जिसे सिंधी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं का ज्ञान हो उसकी सहायता से कुछ श्लोक हम हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत करें। इस कार्य में श्री लक्ष्मण हर्दवाणी शत-प्रतिशत खरे उतरे हैं। मेरे निवेदन पर उन्होंने मेरी आशा से बढ़ कर लगन व परिश्रम से इस कार्य को विद्वत्तापूर्वक सम्पन्न किया है, उसके लिये हम सब उनके आभारी हैं। मैं कामना करता हूँ कि हिन्दी पाठक भी इस अनमोल पुस्तक द्वारा महाकवि के अमृतवचनों से लाभांवित होंगे और इसमें वर्णित आदर्शों को आत्मसात कर जीवन को सार्थकता प्रदान करेंगे।

के .के. रामाणी
ट्रस्टी **रामाणी फ़ाउण्डेशन**
प्लॉट नं. 118, रामाणी विला,
टी.पी. एस. 4, बांद्रा (पश्चिम), मुंबई - 400050
ई-मेल : kkr@ramanilegal.com
फोन : 022 - 26516611
Website : www. sindhipoets.com

◆◆◆

आभार

1. पंडित दीपक शर्मा, होटल वरदान, अपर रोड़, हरिद्वार, जिन्होंने हमारे पूर्वजों के हरिद्वार, प्रवास की जानकारी दी।
2. पंडित सुभाष लक्कि, देव प्रयाग, बद्रीनाथ
3. सरदार हरपालसिंह आग्यासिंह, श्री ओमप्रकाश गुलानी, श्री हर्षद वोहरा तथा श्री तिलक राज शर्मा जिनके द्वारा अमृतसर मंदिर तथा उसमें हमारे पूर्वजों के योगदान से संबंधित जानकारी मिली।
4. श्री नेमीचंद जैन व श्रीमती संगीता सहजवानी जिनके उपयोगी सुझावों द्वारा पुस्तक को यह रूप मिला।

पुस्तक के इच्छुक व्यक्ति निम्नलिखित व्यक्तियों से संपर्क करे :

श्री मुरलीधर रामाणी
रामानी मैनोर,
3 रा क्रॉस रोड़,
लोवर बेन्दुर,
मंगलोर (कर्नाटक) - 575 002
मोबाईल नं. 09845012949

श्री गिरधर रामाणी
504-A खन्ना अपार्टमेंट
डायमंड गार्डन के सामने,
चेंबूर, मुंबई - 400 071
मोबाईल नं. - 09322221004

◆◆◆

आमुख

जहाँ सद्‌गुरु, वहाँ ज्ञान,
जहाँ ज्ञान, वहाँ आत्मज्ञान,
जहाँ आत्मज्ञान, वहाँ समाधान,
जहाँ समाधान, वहाँ कल्याण।

वैदिककाल की वाचिक परंपरा की अनुपम कृति वेद हैं। हजारों वर्ष पूर्व वेदों की रचना सप्तसिंधु-तट पर हुई। सिंधी महाकवि भाई चैनराय दाताराम लुंड 'सामी' जी ने वेदों के ज्ञान एवं उपदेश आदि को 18वीं शताब्दी में सिंधी भाषा में काव्यबद्ध किया । जिस प्रकार संस्कृत में रचित श्रीमद् भगवद्‌गीता सव्वा सात सौ पूर्व संत ज्ञानेश्वरजी ने अपने समय की मराठी भाषा में 'ज्ञानेश्वरी' के रूप में सामान्यजनों को सुनायी, उसी प्रकार सामीजी ने संस्कृत में रचित वेदों की वाणी मध्यकाल में अपने सिंधी श्लोकों द्वारा सुनाई । सामीजी महान सिंधी कवि थे, जिनकी कविता ज्ञान, कार्य और भक्ति की कविता है, प्रेम, भक्ति-रस तथा शांत-रस की कविता है। सामी जी का काव्य इसलिए भी महान है कि यह मनुष्य जाति को उन्नत और मोक्ष का सरल मार्ग दिखानेवाला सुष्ठु काव्य है। वेद, वेदान्त तथा भारतीय संस्कृति का परिचय देने वाले तथा अपने 4300 श्लोकों में व्याख्या करने वाले सामी जी सिंधी साहित्य के पहले और अंतिम कवि हैं।

जिस प्रकार अगाध सागर के तट पर खड़ा होकर क्षितिज को अपने आलिंगन में बाँधने वाली अनंत लहरियों के दर्शन करने से मन आनंद-विभोर हो जाता है, अनंत आकाश से नीचे झाँकते हुए धरती माता का अद्‌भुत सौंदर्य नयनों में भरने से हृदय तृप्त हो जाता है, सिंधु नदी को कल-कल बहते हुए देखकर मन श्रद्धा से परिपूर्ण हो जाता है अथवा सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय किरणों की अठखेलियों से नेत्र-सुख प्राप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार सामीजी के हजारों श्लोक पढ़ते या श्रवण करते समय एक अदभुत एवं अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है, उसका यथार्थ वर्णन करते समय शब्द पंगु हो जाते हैं और मन में रह जाती है यह बूझ कि सामी जी के श्लोक अपने ही अंतर्मन में अनुभव करने के लिए हैं, जो प्रणव का ध्यान करने जैसे हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार संत नामदेव जी ने ''ज्ञानेश्वरी' ग्रंथ के संबंध में कहा है

'नामा म्हणे ग्रंथ श्रेष्ठ ज्ञानेश्वरी। एक तरी ओवी अनुभवावी।'

इसी प्रकार सामी के श्लोकों के संबंध में कहा जा सकता है कि

'एक श्लोक गाओ, परम संतोष पाओ।'

सामीजी एक व्यापारी होते हुए भी ईश्वर-भक्त और ज्ञानी कवि थे। वेसिंधी साहित्य में 'वेदान्ती कवि' के रूप में विख्यात है किन्तु भक्ति, विशुद्ध भक्ति उनकी कविता का स्थायी भाव है। सामीजी ने हजारों श्लोक अपनी ही संस्कृति से संबंधित, अपनी मातृभाषा और अपनी ही लिपि गुरुमुखी (जो देवनागरी का ही एक रूप है) में लिखे। इसके लिए उन्होंने भारतीय छंद, हिन्दी श्लोक को सिंधी रूप प्रदान किया। वेदों की वाणी, ज्ञानवाणी सिंधी में सुनाने वाले महाकवि सामीजी को प्रणाम!

इस पुस्तक में सामीजी के काव्य को समझाने का विनम्र प्रयास किया गया है। वैसे सिंधी काव्य अनुवाद के रूप में हिन्दी में आने के उदाहरण अत्यंत अल्प ही हैं। इस दृष्टि से हिन्दी जगत के लिए यह पुस्तक उपयोगी मानी जा सकती है। इस पुस्तक में सामीजी के अल्प परिचय के साथ उनके काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। सामीजी के सिंधी सौ श्लोक देवनागरी लिपि में लिखकर उनका हिन्दी में शाब्दिक अर्थ और भावार्थ विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है। आशा है, पाठकगण मेरी इस 82वीं पुस्तक से लाभान्वित होंगे।

मैं अत्यंत आभारी हूँ प्रियवर श्री किशनचंद खजानचंद रामाणी जी का, जिन्होंने मुझसे यह पुस्तक लिखवाकर हिन्दी जगत से सामीजी का परिचय कराया है। श्री रामाणीजी महाकवि सामीजी के वंशज हैं। यह पुस्तक प्रकाशित कर आपने अपनी आध्यात्मिक साहित्यिक तथा सामाजिक प्रतिबद्धता का, पूर्वजों के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम का परिचय देकर एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है। साधुवाद !

पुणे - 411006

.लछमन परसराम हर्दवाणी

◆◆◆

महाकवि सामी

18वीं शताब्दी की सिंधी भक्ति-काव्यधारा की त्रिमूर्ति शाह अब्दुललतीफ (1636-1752), सचल सरमस्त (1736-1826) और सामी (1743-1850) सिंधी साहित्य-जगत के तीन अनमोल रत्न हैं। इन तीनों कवियों की अमर कविता पर सिंधी साहित्य एवं समाज को गर्व है। महाकवि सामी को महाजागृति के काल का अंतिम संत-कवि माना जाता है, जिन्होंने अपने गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं वेदान्त के गहन अध्ययन तथा चिन्तन-मनन द्वारा स्वयं तो आत्मज्ञान प्राप्त किया ही साथ-साथ समाज को भी उसका रस-पान कराया।

।। संक्षिप्त परिचय ।।

नाम चैनराय । पिताश्री का नाम दात्ताराम। वंश का नाम लुंड । काव्य में प्रयुक्त उपनाम/तखललुस 'सामी'। इस प्रकार पूरा नाम हुआ - चैनराय दात्ताराम लुंड 'सामी'। यह नाम **चैनराय दात्तारामाणी** 'सामी' की संज्ञा से विख्यात हुआ। (हिन्दू सिंधी समाज में यह पुरानी परंपरा रही है कि अपना कुलनाम (Surname/अल्ल/उपनाम) अपने पिता या दादा-परदादा के नाम के पीछे 'अणी' प्रत्यय जोड़कर भी लिखा जाता है। जैसे : हीरानंद - हीरानंदाणी, माधव - माधवाणी, जयसिंघ - जयसिंघाणी आदि) इसी प्रकार चैनराय जी का कुलनाम भी पिताश्री के नाम दात्ताराम के आधार पर **दात्तारामाणी** हो गया है। अर्थ हुआ 'दात्ताराम के कुल का' या कुल से संबंधित।' चैनराय शिकारपुर (सिंध) के विख्यात 'लुंड' खानदान में से थे। बताया जाता है कि वे अमृतसर और रावलपिंडी के एक व्यापारी के एजेंट थे। वे जीवन भर कपड़े के व्यापारी बन रहे । उनके व्यवसाय के दो प्रधान केन्द्र थे- शिकारपुर (सिंध) और अमृतसर (पंजाब) इन दोनों शहरों में उनका बार-बार आना-जाना होता रहता था। उन्होंने अपने प्रारंभिक श्लोक शिकारपुर (सिंध) में तथा बाद वाले अमृतसर में रचे थे।

सामीजी बीस वर्ष की आयु में स्वामी मेंघराज नामक एक विद्वान पंडित के संपर्क में आये, जो श्रोत्रिय थे, वेद-वेदान्त के ज्ञाता थे। उनके संपर्क में आने के बाद भाई चैनराय (सामी) के जीवन में एक नया मोड़ आया। गुरु के सान्निध्य में वे संस्कृत भाषा और वेदान्त के ज्ञाता बन गये। लगभग दस वर्ष तक अपने गुरु के सहवास में रहकर उन्होंने सिंधी में 'सलोक' (श्लोक) लिखने का अभ्यास भी किया। फलतः आगे चलकर उन्होंने हजारों श्लोकों की रचना की। व्यापार और श्लोक लिखना मानो उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। चालीस वर्ष की आयु से लेकर जीवन के अंतिम समय तक उन्होंने लगभग चार हजार श्लोक लिखे। इनके अतिरिक्त सामी जी की अन्य कोई रचना नहीं मिलती। वस्तुतः सिंध में महाकाव्य अथवा खंडकाव्य लिखने की परंपरा नहीं है। यानी इस विधा से सिंधी साहित्य सदा वंचित रहा है।

।। सामीजी के सलोक (श्लोक) ।।

महाकवि सामी के सभी श्लोक सिंधी भाषा में रचे गये हैं। इनके लिए उन्होंने पंजाबी भाषा की लिपि 'गुरुमुखी' का प्रयोग किया है, जो उस काल में सिंधी समाज में भी प्रयुक्त होती थी। सामीजी अमृतसर में भी रहने के कारण उनके लेखन का आधार गुरुमुखी होना स्वाभाविक माना जा सकता है। वेदान्ती कवि सामी ने अपने श्लोकों में अपने नाम ''चैनराय' का प्रयोग नहीं किया। वे हमेशा अपने गुरु का नाम लेते हैं अर्थात् अधिकांश रूप से '**सामी**' का प्रयोग करते हैं, जो '**स्वामी**' का अपभ्रंश रूप है। कतिपय श्लोकों में 'ब्राह्मण' (ब्राह्मण) और 'मेंघो' (स्वामी मेंघराज) शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। कविता में उन्होंने सिख गुरुओं की प्रणाली अपनाई है। सिख गुरुओं ने अपनी कविता अपने गुरु नानक के नाम से कही है। स्वामी मेंघराज ने अपने अनुयायी को अपने काव्य में वेदान्त की व्याख्या करने की प्रेरणा दी थी। सामीजी का उद्देश्य भी वेदान्त को सिंधी काव्य में व्यक्त करना था। उन्होंने इस लक्ष्य को गुरु-दक्षिणा के रूप में श्रेष्ठ ढंग से पूरा किया। 'सामी' शब्द द्वारा मानो 'स्वामी' मेंघराज की वाणी ही कविता का रूप धारण कर सम्मुख आ गयी है। सामीजी ने अपने गुरु से चार वेद, छह-दर्शन और अठारह पुराण तथा गीता का ज्ञान प्राप्त किया था। साथ ही उन पर सिख-संप्रदाय के धार्मिक ग्रंथों का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। इस प्रकार वे उदार विचारों वाले तथा व्यापक ज्ञान वाले कवि सिद्ध होते हैं।

सामी साहब की जीवनी लिखने वाले लेखकों ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि वे अपने श्लोक कागज के टुकड़ों पर लिखा करते थे और लिखने के पश्चात् उन्हें एक मटके में डालते जाते थे। सामीजी के निधन के पश्चात् उनके सुपुत्र घनश्यामदास ने उक्त टुकड़ों को एकति किया। असंख्य श्लोकों

का वह भंडार कवि की मृत्यु के 35 वर्ष बाद समाज के सामने आया। सिंधी गद्य के जन्मदाता कौड़ोमल खिलनाणी साहब ने सर्वप्रथम 2100 श्लोक एकत्रित करके प्रकाशित करवाये। उन्होंने इस पुस्तक में एक सुंदर भूमिका भी लिखी तथा ऋषि दयाराम गिदूमल की लेखनी से लिखित इन श्लोकों का सार भी दिया। तीन खंडों में संपादित सामीजी के ये श्लोक साहित्य एवं समाज में अत्यंत महत्व रखते हैं। इसके कोई संस्करण प्रकाशित हुए। गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित कौड़ोमल खिलनाणी जी के तीन संस्करणों के बाद अरबी सिंधी लिपि में भी कई संस्करण छपे। गुरुमुखी में भी छोटे बड़े संस्करण सामने आये। इन सब में प्रो. बी.एन. नागराणी द्वारा संपादित एक संस्करण अत्यंत महत्व का माना जाता है। चार भागों में प्रकाशित इस पुस्तक में सामी के श्लोकों के साथ सामी के समय में सिंध की स्थिति, वेदान्त पर विस्तृत भूमिका तथा श्लोकों के विविध पाठ भी सम्मिलित हैं। श्लोकों के विषयानुसार शीर्षक दिये गये हैं। यथा : अविद्या, मूर्ख, माया, मुहब्बत आदि। इससे सामी के श्लोकों का अध्ययन करने में सुविधा होती है। सामी के श्लोकों के कतिपय संकलन भी छपे हैं, जिनमें वाधूमल मूलचंद जी द्वारा संपादित संकलन अधिक लोकप्रिय रहा है। भारत में सामी के श्लोकों के चार भाग प्रकाशित हुए हैं, जो देवनागरी सिंधी लिपि में है और इनमें 3500 से अधिक संकलित हैं। सामी पर सुंदर आलोचनात्मक पुस्तिकाएँ लिखने वाले दो प्राध्यापक हैं- प्रो. कल्याण आडवाणी तथा प्रो. लेखराज 'अजीज' । इस पुस्तक के लेखक ने सामीजी के लगभग 4300 श्लोकों में से चुनिंदा श्लोक छाँटकर दो संकलन प्रकाशित किये हैं. सामीजी के श्लोक संकलित कर पुस्तक प्रकाशित करने वालों में स्व. कीमत हरिसिंघाणी, सुश्री शांति शहाणी एवं अब्दुलकरीम संदेलों के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

भारत में भोपाल निवासी श्री खीमन मूलाणी जी ने सामीजी के चुनींदा श्लोकों का हिन्दी काव्यानुवाद 2005, 2012 तथा 2013 में प्रकाशित किया है। इस पुस्तक के लेखक (प्रो. लछमन हर्दवाणी) ने सामी के श्लोकों के दो संकलन प्रकाशित किये हैं। दोनों संकलन देवनागरी सिंधी लिपि में हैं। प्रथम संकलन में विषयानुसार 1400 श्लोक संग्रहीत हैं और द्वितीय संकलन में सिंधी वर्णमालानुसार 1750 श्लोक संकलित हैं। दोनों के दो-दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत लेखक की देवनागरी सिंधी में लिखी हुई तीसरी कृति '**सामीअ वेद सुणाया**' सामी पर लिखी गयी अन्य पुस्तकों से अलग है। ई.स. 2010 में प्रकाशित इस पुस्तक में सामी साहब के परिचय एवं दार्शनिक दृष्टिकोण की विवेचना के साथ चुनींदा एक सौ श्लोकों की विस्तृत व्याख्या की गयी है। वस्तुत: सामीजी के श्लोकों के विभिन्न संकलन ही अधिक मात्रा में प्रकाशित हुए हैं। अपवाद रूप में कुछ संकलनों में अरबी सिंधी लिपि में श्लोकों का अर्थ विस्तार से समझाया गया है जो नयी पीढ़ी के लिए अत्यंत उपयोगी है। (प्रस्तुत हिन्दी पुस्तक इसी सिंधी पुस्तक के आधार पर लिखी गयी है।)

यहाँ पर मैं सिंध के दो साहित्यकारों का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा। ये दो नाम हैं मरहूम शेख अयाज़ और युवा साहित्यकार जुबैर सूमरो। **शेख अयाज़** आधुनिक सिंधी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनके मन में सामी के श्लोकों के प्रति अत्यधिक आकर्षण एवं प्रेम था। उन्हें सामी में 'सिंध' की शताब्दियाँ' दृष्टिगत हुई हैं। साथ ही उन्होंने सामी को संबोधित कर अनेक सुंदर कविताएँ भी लिखी थी। उनके शब्दों में ''मैं जब भी जीवन की राह में थक जाता हूँ, तब सामी से ही आश्रय अथवा विश्राम की माँग करता हूँ।'' सामी से संबंधित शेख अयाज़ के अनेक बैत एवं लेख एकत्रित कर सिंध के ताज जोयो नामक लेखक ने एक पुस्तक प्रकाशित की है। सिंध और सिंध के महान कवियों के साथ शेख अयाज़ की यह तन्मयता देखिए-

मां ई सचलु, मां ई सामी, मां ई आहियां शाहु,
मु हिंजे मन में छोलियूं मारे, सिंधू तुंहिजो साहु !

यह एक अद्‌भुत संयोग है कि सामी पर सुंदरतम कविता लिखने वाले युवा कवि जुबैर सूमरो भी सामी, शेख अयाज़ की तरह शिकारपुर (सिंध) में जन्मे हैं। जुबैर ने '**सामीअ मट उपटिया**' नामक एक अति सुंदर पुस्तक अरबी सिंधी लिपि में लिखी है। जुबैर ने इस कृति को 'श्रद्धांजलि' कहा है। किन्तु यह मात्र श्रद्धांजलि नहीं है। सामी में अपार श्रद्धा रखने वाले कवि जुबैर सामी के अंतर्मन से इतने एकाकार हो गये हैं कि उन्होंने अपना अंतर्मन ही खोलकर रख दिया है। कवि की सृजनात्मक शक्ति जागृत हो गयी है और परिणाम स्वरूप जुबैर सामी के युग में, सामी के शिकारपुर शहर में पहुँच गये हैं। वे सामी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते। जुबैर ने दो-दो पंक्तियों वाले 'बैतों' में सामीजी का अंतर्जगत ही खोलकर कर रख दिया है। कवि के 214 'बैत' सचमुच अनूठे हैं, सृजनात्मक का शृंगार हैं। 2006 में प्रकाशित इस छोटी-सी पुस्तक में सामीजी के व्यक्तित्व का मार्मिक रेखाचित्र खींचा गया है। एक मुस्लिम कवि द्वारा एक हिन्दू कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को वांछित रूप में समझना अपने आप में एक अद्‌भुत एवं आदर्श उदाहरण है। एक कवि द्वारा दूसरे कवि की काव्यात्मक प्रशंसा सचमुच अनूठी और हृदयस्पर्शी है। यद्यपि सिंध के अनेक हिन्दू-मुस्लिम साहित्यकारों ने सामी जी की समीक्षा एवं सराहना की है, किन्तु जुबैर सूमरो का इस दिशा में और कोई सानी नहीं है। उनके बैत 'सतसइया के दोहरे' के समान पाठकों के हृदय में पैठ जाते हैं। इस पुस्तक के लिए सिंध के लेखक वली राम वल्लभ की लिखी हुई विस्तृत प्रस्तावना सामीजी को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है। यहाँ पर जुबैर के कुछ बैत द्रष्टव्य हैं-

सामी ! मट उपटि तूं, प्रेम मधु पीऊं,
जोगी थी जीऊं, पसूं पंथ प्रेम जा !

(अर्थात् 'हे सामी ! तुम अपने मट (माट, मटके) खोल दो ताकि हम, प्रेम का मधुर-रस-पान कर सकें और फिर हम योगी बन कर जी सकें तथा प्रेम का पंथ देख सकें।)

सामी उपटे मट, कई सलोकनि उपटार,
छह अठारहं चार, समुझायाईं सिंधीअ में !

(अर्थात् सामी ने (ज्ञान के) मट/मटके खोलकर विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने चार वेद, छह दर्शनशास्त्र एवं अठारह पुराण ग्रंथ सिंधी भाषा में समझाये।)

आकार निराकार जा, हजारें सुवाल,
कुर्ब जा कुलाल, सामीअ मट उपटिया!

(अर्थात्, साकार और निराकार ब्रह्म के संदर्भ में हजारों प्रश्न हैं। परन्तु कुम्हार सामी ने (प्रभु) प्रेम के मट/माट खोल दिये।)

सामी सुवामी सिंधु जो साधू, सूफी, संतु,
मगर अंदर अंतु, कंहिंखे डिनाई कीनकी !

(अर्थात् सामी सिंध के साधु, सूफी और संत हैं। किन्तु उन्होंने कभी किसी को अपने अंतर्मन की थाह लेने नहीं दी। कोई भी सामी के अंतर्मन की थाह नहीं ले सका।)

अत: यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि कवि जुबैर सूमरो सामी जी के वेदान्त दर्शन के कायल हैं।

यहाँ पर एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शेख अयाज़, जुबैर सूमरो तथा अन्य मुसलमान सिंधी लेखकों ने सामीजी का समावेश सिंध के सूफी कवियों में किया है। उनकी दृष्टि में सामी भी सूफी कवि हैं। वस्तुत: सामी विशुद्ध वेदान्ती कवि हैं। उन्होंने स्वयं भी इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए स्वयं को 'वेंदों की वाणी सिंधी में सुनाने वाला' माना है। सामी ने अपने श्लोकों में वेद, उपनिषद, पुराण और गीता आदि के सिद्धांतों का सरल सिंधी भाषा में प्रतिपादन किया है और वेदान्त की व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी है कि सिंध के सूफी कवि भी वेदान्त एवं भारतीय दर्शन से प्रभावित रहे हैं, जिन में शाह अब्दुल लतीफ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कभी-कभार सामी के श्लोक शाह के बैतों की तरह लगते हैं, इसका कारण भी यही माना जा सकता है। वस्तुत: सामी के श्लोक किसी भी सिंधी कवि की रचना की भाँति हैं। उन में कुछ तो सिंधी 'काफी' की तरह लगते हैं। सामी के श्लोक भारतीय तत्त्वज्ञान से प्रभावित हैं और हिन्दू परिवेश में लिखे गये हैं। उनकी विषय-वस्तु रहस्यवादी हैं, जो सिंधी हृदय को आह्लादित करती है।

यह निस्संदेह माना जा सकता है कि सिंधी कविता के सिरमौर शाह लतीफ और सचल सरमस्त के साथ-साथ सामी के काव्य की जड़ें भी सिंध की भूमि में इतनी गहराई से गड़ी/पैठी हुई हैं कि इन तीनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता । ये तीनों कवि मानो सिंधी काव्य की आत्मा हैं। इसी कारण इन्हें सिंधी कविता की त्रिमूर्ति कहा गया हैं। किन्तु सामी अपने पूर्ववर्ती कवियों (शाह और सचल) से निश्चित ही निराले हैं, भिन्न हैं। शाह और सचल पर निस्संदेह वेदान्त का प्रभाव है और वे भारतीय चिन्तन एवं तत्वज्ञान से परिचित भी थे। दोनों ही मूल रूप से सूफी कवि हैं। किन्तु सामीजी सभी दृष्टियों से वेदान्ती कवि हैं। जिन के काव्य पर भारत के संत-कवियों की भाँति वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, भागवत आदि ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। क्योंकि ये ग्रंथ मध्यकालीन भारतीय संत कवियों केचिंतन एवं सृजन का प्रमुख आधार रहे हैं। इस दृष्टि से सामी जी न केवल शाह और सचल से अपितु समस्त सिंधी कवियों से भिन्न प्रतीत होते हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से सामीजी के पश्चात् मात्र एक महान संत-कवि सिंधी साहित्य एवं समाज को प्राप्त हुए हैं, जिनका नाम **स्वामी टेऊँराम** (1887-1942) है। हिन्दी और सिंधी भाषा में विरचित आपका विशाल एवं महत्तम '**प्रेम प्रकाश ग्रंथ**' इस तथ्य का द्योतक है। महाकवि सामी के पश्चात् सिंधी और हिन्दी भाषा में वेद-वेदान्त की व्याख्या करने वाले एकमात्र संत स्वामी टेऊँराम साहब ही हैं। सिंधी समाज में '**प्रेम प्रकाश ग्रंथ**' का वही स्थान है, जो पंजाबी और सिंधी समाज में गुरूनानक देवजी के '**गुरु ग्रंथ साहिब**' का है।

।। सामी के काव्य में निहित तत्त्वज्ञान ।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामीजी वेदान्ती कवि थे। वे उदार विचारों वाले तथा व्यापक ज्ञान वाले सज्जन व्यक्ति थे। अपने गुरु मेंघराज के सान्निध्य में आने पर कई वर्षों तक उन्होंने वेदों, उपनिषदों आदि का अध्ययन एवं चिंतन-मनन किया। वेदान्त में उनकी अपार श्रद्धा थी। इसी श्रद्धा एवं निष्ठा के कारण उन्होंने वेद-वेदान्त के ज्ञान अथवा भारतीय चिंतन को अपने काव्य का विषय बनाया । उनके श्लोक वेदान्त-दर्शन की सरल सिंधी भाषा में व्याख्या करते हैं। सामीजी स्वयं कहते हैं कि मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूँ। मैं वेदों की ही वाणी सुना रहा हूँ। सामीजी के श्लोकों में वेदान्त-दर्शन की ही सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उनका वेदान्त में दृढ़ विश्वास था। सार रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है- परब्रह्म/परमेश्वर एक है। यह सृष्टि उसी का विस्तार है। परमेश्वर कण-कण में विद्यमान है। मनुष्य देह दुर्लभ है। मनुष्य परमात्मा का ही अंश है। जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। भूतल पर आकर मनुष्य माया के कारण अपने मूल स्वरूप को भुला देता है। अज्ञान के कारण वह अपनी अंतरात्मा को पहचान नहीं सकता। माया के जाल में फँसकर जीव मोहग्रस्त हो जाता है। वह अपनी देह को ही सब कुछ। मानकर उस पर गर्व करने लगता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' के सत्य को भूल जाने वाला जीव जगत को सत्य मान लेता

है। जीव/मनुष्य के पाँच शत्रु हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। ये मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति में बाधा उपस्थित करने वाले हैं। इनके फंद से मुक्त होना बड़ा कठिन है।

अपना मनुष्य जन्म सार्थक-सफल करने के लिए, जन्म-मृत्यु के कुचक्र से छूटने के लिए परमेश्वर की विशुद्ध भक्ति अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए सर्वप्रथम भीतर के अज्ञान को दूर कर मन निर्मल और पवित्र करना होगा। इस दिशा में सतगुरु हमारी सहायता कर सकते हैं। सतगुरु के ज्ञान और सत्संग द्वारा हमारा अज्ञान मिट सकता है। साक्षात्कार अथवा ईश्वर की प्राप्ति तथा मुक्ति पाने के मार्ग में सतगुरु हमारे मार्गदर्शक बनते हैं। परमेश्वर की भक्ति करने के लिए शुद्ध भाव और अनन्य प्रेम की नितांत आवश्यकता होती है। शुद्ध अंत:करण से प्रेम किये बिना परमात्मा को पाना संभव नहीं है। सच्चे भक्त को कँटीले प्रेम-मार्ग से गुजर कर ही अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचना पड़ता है। भक्ति के क्षेत्र में भेद-भाव का कोई स्थान नहीं है। प्रेम-भाव निष्काम एवं विशुद्ध होना अनिवार्य है। परब्रह्म या प्रियतम परमेश्वर हमारे अंतर में ही है इ.।

।।भावपक्ष।।

यद्यपि सामी ज्ञानमार्गी कवि थे तथापि परमेश्वर के दोनों (निर्गुण और सगुण) रूप उन्हें प्रिय थे। वेदान्त की व्याख्या करना उनका उद्देश्य था। वेदान्त में वर्णित ब्रह्म, जीव, जगत, माया, अविद्या, अज्ञान, आत्मज्ञान, साक्षात्कार, मोक्ष-मुक्ति आदि आध्यात्मिक संज्ञाओं को अपने श्लोकों द्वारा समझाने का सफल प्रयास सामी जी की बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। उन्होंने पुराने/प्राचीन कथ्य को सरल भाषा में कहने-समझाने का प्रयत्न किया है, जो पुराना होते हुए भी चिर-नवीन है, मार्मिक और हृदयग्राही है। वस्तुत: वे एक व्यापारी थे किन्तु उनका सृजनात्मक कार्य किसी कवि-हृदय ऋषि से कम नहीं है। हजारों वर्ष पहले सिंधु नदी के तट पर प्रबुद्ध ऋषि-मुनियों द्वारा जिस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की सर्जना हुई थी, वह सामीजी के श्लोकों में प्रवाहित हो गया है। भारतीय दर्शन को भाव-मधुर श्लोकों में उँडेल कर पिपासु पाठकों को अध्यात्म एवं प्रभु-प्रेम का रस-पान कराया है। सामी साहब ने मानो ज्ञान-रस की छोटी-बड़ी मटकियाँ ही खोलकर सामान्यजनों को पीने के लिए प्रदान की हैं।

सामी के चिंतन-मनन और काव्य-सृजन के अनंत विषय एवं भाव हैं, जो उनके हजारों श्लोक रूपी घड़ों से छलक रहे हैं। सामी द्वारा व्यक्त विचार उनके अपने संबंध में नहीं हैं। वे जो कुछ भी कहते हैं, वह ब्रह्म, जीव, जगत, माया, अविद्या, अज्ञान, प्रभु-प्रेम, विशुद्ध प्रीति, प्रियतम परमेश्वर, विरह, व्याकुलता, भवसागर और जन्म-मृत्यु के कुचक्र से मुक्ति, अज्ञान के कारण जीव का भटकाव, सांसारिक दु:खों-कष्टों से पीड़ित सामान्य जन, विषयों में लिप्त मनुष्य, समाज में फैला हुआ अज्ञान, पाखंड आदि विषयों के साथ-साथ परमेश्वर की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनों को भी सामी ने अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सामी जी एक व्यापारी थे। किन्तु अंतर्मन से वे त्यागी, योगी, संन्यासी थे। विषयों में न

उलझकर उन्होंने अपने अंतर्ज्ञान की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण माना है। संत कबीर अथवा मराठी संत तुकाराम की भाँति सामी की कविता एक ओर अंत:शुद्धि, विशुद्ध भक्ति, प्रभु से अनन्य प्रगाढ़ प्रेम और पाखंड से मुक्त रहने की बात कहती है, तो दूसरी और परमात्मा के साक्षात्कार और परम पद पाने के लिए प्रभु के प्रेम में रंग जाने का उपदेश भी करती है। एक ओर जीव/मनुष्य को उसके अपने मूल स्वरूप - 'अहं ब्रह्मास्मि' का स्मरण कराती है, तो दूसरी ओर परमात्मा के कण-कण में विद्यमान होने का तथा सभी जीवों से प्रेम तथा सदाचारपूर्ण व्यवहार करने की सीख भी देती है। जीवन को सचेत कर उसका अज्ञान दूर करने का प्रयास करने वाली यह कविता एक मित्र की भाँति परामर्श देने वाली है। अनेक स्थानों पर सामी की वाणी किसी क्रांतिकारी समाज सुधारक की तरह प्रतीत होती है। किन्तु सामी की उक्तियों में कबीर की भाँति उतनी प्रखरता या प्रचंडता नहीं है। कबीर की अपेक्षा सामी काफी हद तक सौम्यता लिये हुए हैं। उनकी प्रवृत्ति खंडनात्मक नहीं है। है केवल प्रेम, सौहार्द्र, सज्जनता, समरसता, करुणा, ईश्वरनिष्ठा और समर्पण का भाव। प्रियतम परमेश्वर को अपने ही मन में ढूँढने और पाने की बात कहने वाले सामी अपने काल के पहले सिंधी कवि हैं। काषाय वस्त्र धारण किये बिना अथवा भक्तों की भीड़ में प्रवचन-प्रबोधन किये बिना अपने ही निवास-स्थल अथवा कार्य-स्थल पर रहते हुए छोटे-छोटे श्लोक रचकर अंत: चेतना द्वारा समाज-प्रबोधन करना अथवा प्रभु-प्रेम की अखंड ज्योति जगाना अपने आप में अनूठी बात है। सामीजी ने चाहे अपने विषय में कहीं कुछ भी नहीं लिखा हो किन्तु अपने असंख्य श्लोकों में उन्होंने जो अपने अंतर्मन का भाव-विश्व सामने खोलकर रख दिया है, वह उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आकलन करने के लिए पर्याप्त है।

सामी के भाव-जगत का निरीक्षण करते समय एक बात अवश्य ही स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि सामी कविता स्वच्छंदतावादी या रोमांटिक नहीं है। उनके श्लोकों में स्वच्छंद प्रेम, युद्ध, संघर्ष आदि का कोई स्थान नहीं है। कोई प्रेमाख्यान लिखने का प्रयत्न भी सामी ने नहीं किया है। फिर भी वे इतने आकर्षक कवि हैं। वे हमेशा शीतल और शांत स्वभाव वाले होने के कारण उनकी कविता भी शीतल बन गयी है। प्रेम और बुद्धि को एक ही पंछी के दो पंख मानने वाले सामी जी के समस्त श्लोकों में लौकिक प्रेम की अपेक्षा पारलौकिक प्रेम तथा उच्च श्रेणी की तार्किकतता के तत्त्वों का सुंदर सम्मिश्रण मिलता है, जिससे उनकी कविता विशेष रूप से सरस हो गयी है। मानो प्रेम-मार्ग, ज्ञान-मार्ग पर चलने लगा है और ज्ञान-मार्ग प्रेम-मार्ग का अनुसरण करने लगा है। दोनों की यह समरसता अथवा एकरूपता सामी साहब के श्लोकों को सरस बनाये हुए है। इस प्रकार ये श्लोक मधुर होने के साथ-साथ गंभीर भी हैं।

ऊपर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि सामी वेदों की व्याख्या करने वाले कवि हैं। उन्होंने स्वयं ही विनम्रता से कहा है, ''मैं सिंधी में वेदों की वाणी सुनाता हूँ।' यह उनकी स्पष्ट एवं प्रांजल स्वीकृति है। भारतीय/हिन्दू संस्कृति जिन-जिन बातों को महत्व देती है- यथा त्याग और वैराग्य, अहिंसा, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, कर्त्तव्यपरायणता, सत्यम, शिवम्, सुंदरम्, संयम आदि- इन सबको सामीजी ने अपने श्लोकों में कौशल, सादगी, सच्चाई और पूर्णता के साथ वाणी दी है। उनके सरस एवं अर्थपूर्ण श्लोक हिन्दू धर्मशास्त्र तथा वेद-वेदान्त की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायता करते हैं। फलस्वरूप सामान्य पाठक भी अनहद नाद, कुंडलिनी अथवा विभिन्न तांत्रिक शब्दों के रहस्यों का, योग शास्त्र का गहन अध्ययन किये बिना ही, इन श्लोकों का रसास्वाद ले सकता है। इस प्रकार निस्संदेह कहा जा सकता है कि सामी जी का भाव-जगत विशाल, समृद्ध एवं अद्‌भुत है।

।। कलापक्ष ।।

कलापक्ष की दृष्टि से भी सामी का काव्य श्रेष्ठ है। सामीजी ज्ञानी थे, वेदान्ती थे। वेदों की वाणी सामान्य जन तक पहुँचाना उनका उद्देश्य था। अपने भाव एवं विचार अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने सिंधी में '**सलोक**' छंद का प्रयोग किया है। 'सलोक' शब्द 'श्लोक' का अपभ्रंश है। 'श्लोक' संस्कृत की दो पंक्तियों की रचना है, जिसके द्वारा किसी प्रकार का कथोपकन किया जाता है। किन्तु सामीजी के 'सलोक' (श्लोक) तीन-तीन, चार-चार अथवा अधिक पंक्तियों वाले भी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सामी द्वारा प्रयुक्त 'सलोक' छंद संस्कृत के श्लोक जैसा नहीं है। वस्तुत: सामी जी ने **हिन्दी के श्लोक छंद** का प्रयोग किया है, जिसे उन्होंने '**सलोक**' नाम दिया है। हिन्दी श्लोक भी मूल रूप में संस्कृत का '**अनुष्टुप**' छंद है, जो न पूर्णतया मात्रिक छंद है और न ही पूर्णतया वार्णिक छंद। अनुष्टुप में चार चरण होते हैं। हर चरण/पंक्ति में आठ-आठ वर्ण/अक्षर होते हैं पर मात्राएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। सामीजी ने इसी अनुष्टुप छंद का प्रयोग किया है, जिसे हिन्दी में '**श्लोक**' कहा गया है और हिन्दी के अनुसार ही सिंधी में '**सलोक**' कहा है। सामीजी हिन्दी भाषा के भी ज्ञाता थे, अत: उनके द्वारा 'श्लोक' को सिंधी भाषा के अनुकूल 'सलोक' में प्रस्तुत करना उचित ही है। यहाँ पर एक बात ध्यातव्य है कि सामीजी ने अपने 'सलोक' रचते समय काफी स्वतंत्रता बरती है। अनुष्टुम/श्लोक की तुलना में ये सलोक अनुष्टुप/श्लोक से कुछ भिन्न ही प्रतीत होते हैं। अर्थात् सामी के सलोक/श्लोक बड़ी संख्या में चार-चार चरणों वाले हैं। कुछ श्लोक तीन-तीन चरणों वाले हैं तो कुछ चार से अधिक 16-16 अथवा 18-18 चरणों/पंक्तियों वाले भी मिलते हैं। साथ ही इनके चरणों में विषम वर्ण-संख्या भी पाई जा सकती है। यह हो सकता है कि हिन्दी के 'श्लोक' को आधार बनाकर इन्होंने अपने सलोक/गुरुमुखी में लिखते समय स्वतंत्रता बरती हो अथवा गुरुमुखी से अरबी सिंधी में लिप्यंतर करते समय तत्कालीन लिपिक/लेखकों से कोई असावधानी हो गयी हो और फिर अरबी सिंधी से देवनागरी में आते समय भी कुछ

त्रुटियाँ रह जाने की संभावना को भी नकारा नहीं जा सकता। इतना निश्चित है कि सामी के 'सलोक' हिन्दी श्लोक या अनुष्टुप छंद का पालन पूर्णत: करते हुए दिखाई नहीं देते।

सामी के श्लोकों की भाषा पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि सामीजी ने अनेक वर्षों तक अपने गुरु से संस्कृत भाषा और वेद-वेदान्त का ज्ञान प्राप्त किया था। अत: वे संस्कृत के ज्ञाता थे और उन्हें हिन्दी भाषा भी आती थी। हिन्दी के भक्ति-साहित्य का अध्ययन भी उन्होंने किया होगा। इन्हीं कारणों से उनके श्लोकों में संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के शब्दों की बहुलता है। उनके काव्य में भी अरबी-फारसी के भी शब्द मिलते हैं। इस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति में प्रयोग की दृष्टि से किसी विशिष्ट शब्द से परहेज नहीं की है। जो शब्द उन्हें उचित लगा, उसका उन्होंने प्रयोग किया है। यह उनकी उदारता का प्रमाण है। सामी की भाषा की एक विशेषता यह भी है कि वह शिकारपुर (सिंध) और उत्तर सिंध की भाषा है। शिकारपुरी बोली/भाषा उस नगर और आस-पास बोली जाती थी और सिंधी भाषा का यह रूप सामीजी के परिवार में भी प्रयुक्त होता था। वे स्वयं इसी नगर के निवासी थे। उनके श्लोकों में इस बोली/भाषा की विशेषताएँ दिखाई देती हैं। सामी की यह भाषा अधिक मधुर सरल एवं समान्य लोगों के, विशेष कर स्त्रियों के हृदय को छूने वाली है, हृदयस्पर्शी है। सामी के श्लोकों की यह भाषा स्त्रियों को अधिक पसंद है। सिंधी मंदिर, मठ और गुरुद्वारों में भी अपने प्रवाह, माधुर्य, गांभीर्य और गेयता गुण के कारण यह भाषा लोकप्रिय रही है। भारत के प्रसिद्ध सिंधी गायक श्री घनश्याम वासवाणीजी ने अपने सुरीले स्वर में सामीजी के अनेक श्लोकों का गान किया है।

सामी साहब की भाषा पर विचार करते समय सिंध (पाकिस्तान) के कुछ सिंधी मुसलमान साहित्यकारों के मत का उल्लेख करना चाहूँगा । ये अदीब सामी के सलोक/श्लोक ठीक तरह से समझ नहीं पाते और इसका कारण वे सामी की संस्कृत-प्राकृत प्रचुर भाषा मानते हैं। साथ ही वे वेद-वेदांत की पारिभाषिक शब्दावली से अनभिज्ञ होने के कारण सामी को ग्रहण कर पाना उनके लिए कठिन लगता है। प्राकृत-हिन्दी शब्दों की बहुलता के कारण सामी की भाषा, पूर्ववर्ती अथवा तत्कालीन सिंधी कविता की भाषा से निराली प्रतीत होती है, जो तसव्वुफ़ या सूफ़ीवाद की भाषा है, जिसमें उर्दू-फारसी-अरबी शब्दों का बाहुल्य है। सामीजी ने तो अपनी कविता के लिए समकालीन सिंधी भाषा का, हिन्दू समाज के परिवश की भाषा का निस्संकोच प्रयोग किया है, जो उनकी कविता के विषयानुरूप तथा भावानुरूप है।

मैं सामीजी को भाषा का भगवान मानता हूँ। भाषा पर उनका उद्भुत अधिकार है। उनके संकेत अथवा आज्ञानुसार शब्द अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि उनके 4300 से अधिक श्लोकों में भाषा या शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से पुनरावृत्ति नहीं मिलती। हर 'सलोक'

में शब्द अपने-अपने विशिष्ट स्थान पर आये हुए हैं। माया, अविद्या, प्रेम आदि विषयों पर सैकड़ों श्लोक हैं किन्तु पुनरावृत्ति नहीं मिलती। भाव और विचार की पुनरावृत्ति अवश्य मिलती है। पर एक ही भाव या विचार पर लिखे गये सैकड़ों श्लोक पाठकों की रुचि को बनाये रखते हैं। एक ही बात को अलग-अलग शब्दों में बार-बार कहकर भी वे अपनी भाषा को ताजा और नवीन बनाए हुए हैं। यह भाषा सदैव अर्थपूर्ण एवं आकर्षक है। पाठकों की रुचि कहीं कम नहीं होती। उन्होंने अमूर्त भाव और विचार तथा आध्यात्मिक विषयों के प्रतिपादन करने अथवा मूर्त करने में अपने पाठकों की रुचि बनाये रखी है। सामी की सौम्य भाषा में सब को सम्मोहित कर सकने का सामर्थ्य सराहनीय है। सिंधी समाज उनके काव्य को 'मधुर काव्य' कहता है। माधुर्य गुण के कारण उनके श्लोक पढ़ने और सुनने में अच्छे लगते हैं। उनके अर्थपूर्ण शब्द कठोरता और कर्णकटुता को त्याग कर मधुरता की सरिता में नहाकर आये हैं। सामीजी शब्दों के जादूगर लगते हैं। शब्दों के प्रयोग में उनकी यह जादूगरी देखी जा सकती है। शब्द-प्रयोग की दृष्टि से वे ईश्वर की भाँति समदर्शी हैं। इसलिए विदेशी या पर-भाषा के शब्दों का प्रयोग करने में भी उन्होंने कभी संकोच नहीं किया है।

सामीजी अपनी विशिष्ट काव्य-शैली के लिए अलग पहचान रखते हैं। उनका कथ्य और शिल्प पूर्ववर्ती सिंधी कवियों से भिन्न है। वेद-वेदांत आदि से संबंधित उनके श्लोक गंभीर भी हैं। आलोचकों के मतानुसार सिंधी काव्य में यदि कहीं 'भव्य' और 'उदात्त' शैली है तो वह सामी के श्लोकों में है। विशेष बात यह है कि यह शैली राजाओं-रानियों, स्वर्ग-नरक, युद्ध और रक्तपात अथवा प्रेम के रोमान्स आदि का वर्णन किये बिना ही भव्य और उदात्त है। अलंकारों की अत्यधिक भरमार के बिना भी यह अपने प्राकृतिक सौंदर्य से पाठकों को आकर्षित करने वाली शैली है। उनके काव्य में कोई नया अथवा असाधारण बिम्ब-विधान भी नहीं है और न ही अबोधनीय प्रतीकात्मकता। उनके काव्य में परंपरागत बिम्ब-विधान पाया जाता है, जो सरलता लिये हुए हैं। जैसे: खुला आकाश, सरोवर में कमल, मृग/हिरन की नाभि में कस्तूरी, जिसका ज्ञान मृग को नहीं होता, रेगिस्तान में मृग-मरीचिका, रस्सी में साँप का भ्रम, पलंग और लौ, कृष्ण की बाँसुरी आदि। अनेक पारंपरिक एवं नये रूपक भी उनकी कविता के सुंदर और बोधगम्य बनाने में सहायक हुए हैं। यथा: मन-मथुरा, दिल-द्वारिका, काया-काशी, सत्संग रूपी पारस आदि । सामी जी ने अनेक दृष्टांतों का भी प्रयोग किया है। भावना, माया, भ्रम, काल/मृत्यु, वृक्ष आदि का मानवीकरण करने से उनके सलोकों में सजीवता आ गयी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामी के काव्य का कलापक्ष भी उनके भावपक्ष की भाँति भव्य एवं प्रभावशाली है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं को देखते हुए मैंने सामीजी को महाकवियों की श्रेणी में समाविष्ट करने का साहस किया है।

जिस प्रकार महाराष्ट्र के महान संत ज्ञानेश्वरजी ने संस्कृत में रचित श्रीमद् भगवत्गीता तत्कालीन मराठी साहित्यिक एवं सामाजिक प्रतिबद्धता सराहनीय और वंदनीय है। सामीजी का यह अभूतपूर्व काव्य मुझे मराठी संत समर्थ रामदास स्वामी जैसा प्रतीत होता है, जिनके महान ग्रंथ 'दासबोध' और सामी के श्लोकों में विषय-वस्तु या कथ्य की दृष्टि से अनेक स्थानों पर समान विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। संत तुकाराम महाराज के अनेक 'अभंग' मुझे सामी के अनेक अभंगों का स्मरण दिलाते हैं। (इन तीनों महान कृतियों का मैंने सिंधी में अनुवाद किया है।) संत कबीर के साथ भी सामीजी की तुलना की जा सकती है। गुरुनानक जी के 'गुरु ग्रंथ' साहिब का भी उन पर प्रभाव देखा जा सकता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत में अध्यात्म और भक्ति की जो मंदाकिनी बही, उसमें असंख्य कवि और सामान्यजन नहाकर पवित्र हो गये, जिन में सामीजी का भी समावेश किया जा सकता है। सामीजी सिंधी के तीन महान तथा विशिष्ट कवियों में से एक तथा अंतिम कवि हैं। वे हिन्दू भक्ति-धारा के सर्वश्रेष्ठ सिंधी कवि है।

◆ ◆ ◆

सामी वंशावली

चैनराय दात्ताराम लुंड 'सामी' (1743-1850)

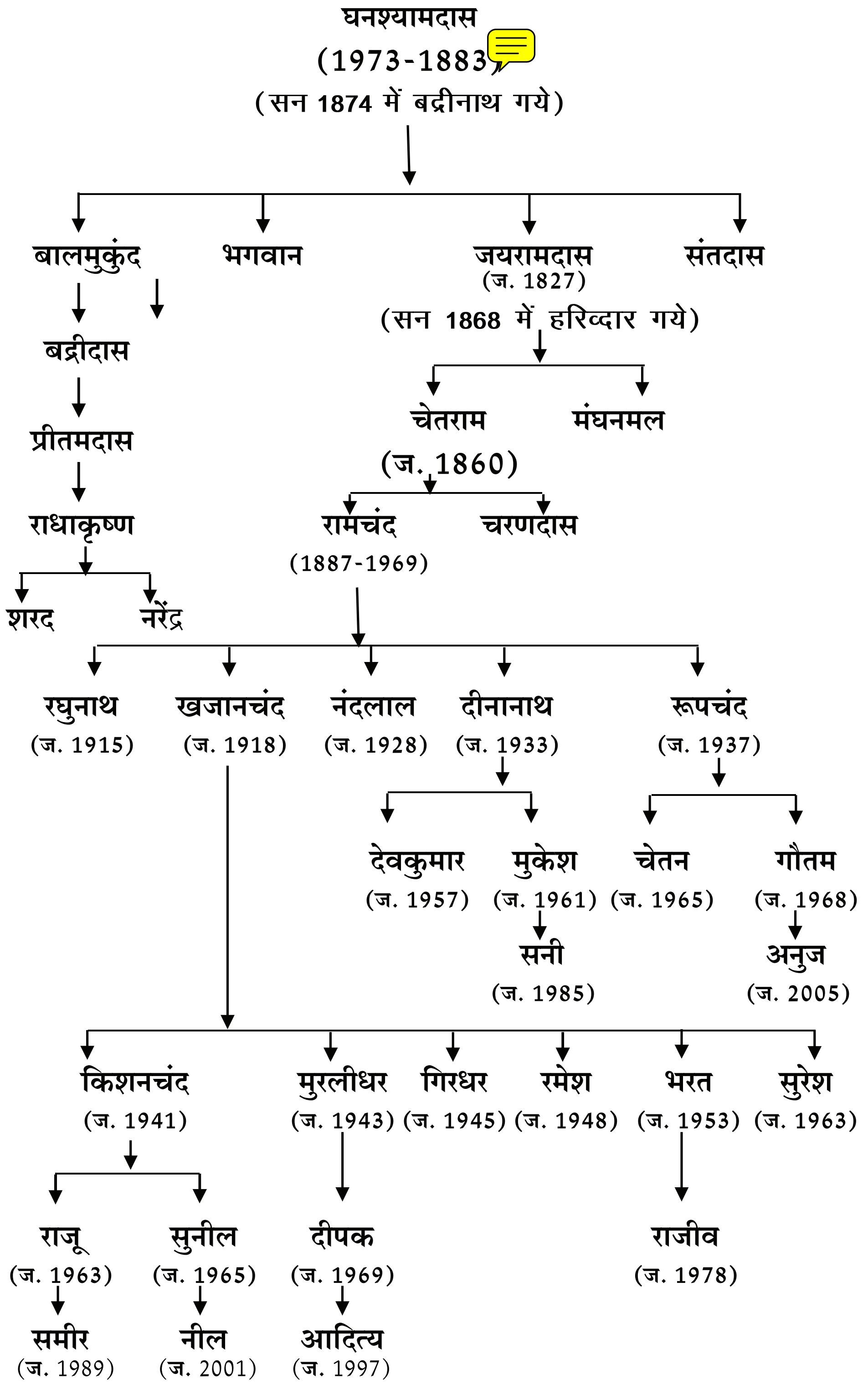
घनश्यामदास
(1973-1883)
(सन 1874 में बद्रीनाथ गये)
बालमुकुंद
भगवान
जयरामदास
(ज. 1827)
(सन 1868 में हरिव्दार गये)
संतदास
बद्रीदास
प्रीतमदास
राधाकृष्ण
शरद
नरेंद्र
चेतराम
(ज. 1860)
मंघनमल
रामचंद
(1887-1969)
चरणदास
रघुनाथ
(ज. 1915)
खजानचंद
(ज. 1918)
नंदलाल
(ज. 1928)
दीनानाथ
(ज. 1933)
रूपचंद
(ज. 1937)
देवकुमार
(ज. 1957)
मुकेश
(ज. 1961)
सनी
(ज. 1985)
चेतन
(ज. 1965)
गौतम
(ज. 1968)
अनुज
(ज. 2005)
किशनचंद
(ज. 1941)
मुरलीधर
(ज. 1943)
गिरधर
(ज. 1945)
रमेश
(ज. 1948)
भरत
(ज. 1953)
सुरेश
(ज. 1963)
राजू
(ज. 1963)
समीर
(ज. 1989)
सुनील
(ज. 1965)
नील
(ज. 2001)
दीपक
(ज. 1969)
आदित्य
(ज. 1997)
राजीव
(ज. 1978)

सिंधी 'हटाई/हटवाणीकी' लिपि में लिखित पत्र

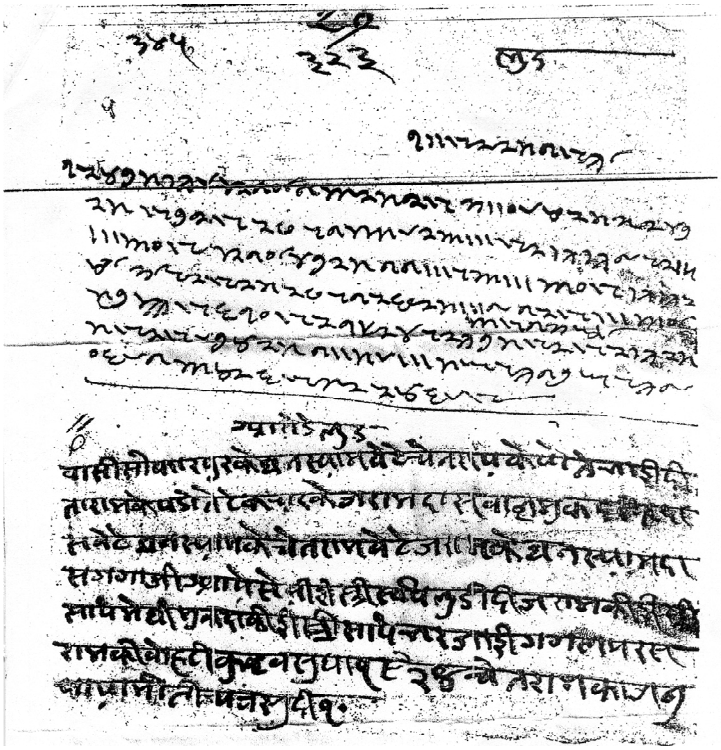

C.Y. 1868

Note 1 : Sindhi (Hatai) writing of Shri Manghanmal Jairamdas Lund on his visit to Haridwar in Samvat year 1924 (Christian year 1868) for the thread ceremony of his brother Shri Chetram Jairamdas Lund. This writing also proves that Shri Ghanshamdas and his sons Balmukund, Jayramdas & Santdas had also accompanied Shri Manghanmal during his Haridwar visit.

जी लिखत मंघनमल चिरंजीव जयरामदास, भगवान, बालमुकुंद चेतराम, संतदास, लुंड, पूज घनश्यामदास चैनरायाणी, श्री गंगाजी आया से, चिरंजीव चेतराम जा जण्या पायण आयासे, गगल बाई, भाई परसराम लुंड, पूज लछमणदास जी ज़ाल साण आई मिती चेत्र सुदी 10 साल 1924, (क्रिश्चियन वर्ष 1868) पुरोहित मिश्र सालगराम मिश्र सन्तोखराम जोग मुनीण साण पंहिंजे तथा पहंजन वडनि जा अखर दिसी करे लिखी दिना से

Hindi writing of Haridwar priest who performed thread ceremony of Chetram at Haridwar.

वासी शिकारपुर के घनश्याम बेटे चैनराय के, पोते भाई दाताराम के, प्रपोते टेकचंद के,- जयरामदास, बालमुकुन्द, संतदास बेटे घनश्याम के- चेतराम बेटे जयराम के, घनश्यामदास जी के साथ गंगाजी आये- चेतराम के जनेऊ के लिए- मिती चेत्र सुदी 10 के लिए संवत् 1924 (क्रिश्चियन वर्ष 1868)

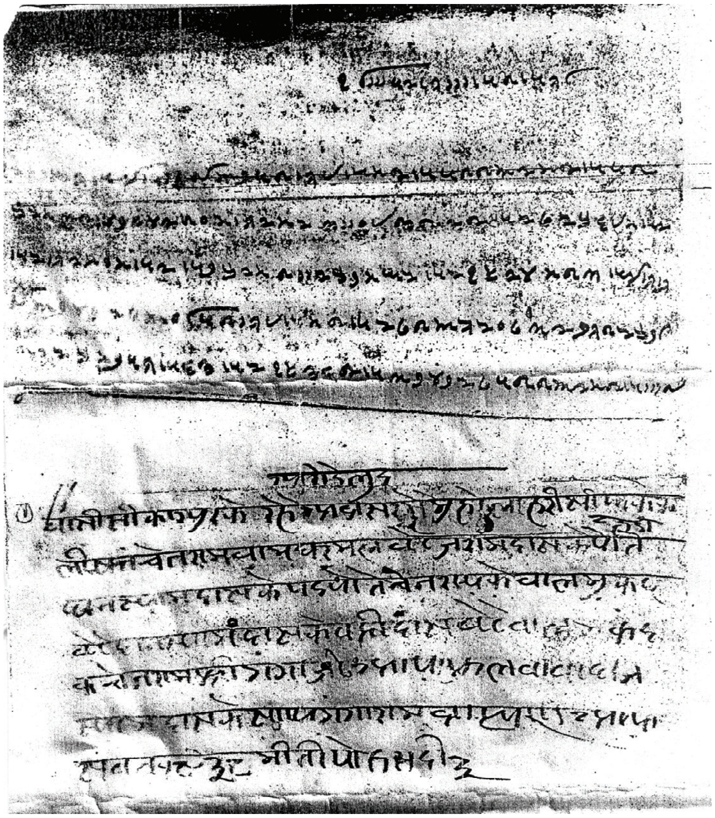

C.Y. 1882

Note 2 : This shows Haridwar visit of Shri Chetram Jairamdas Lund in the Christian Year – 1882 when he had settled down in Mohalla – Harisingh in Amritsar. His writing is in Sindhi mercantile language (Hatai).

Sindhi (Hatai) writing of Shri Chetram, Jairamdas Lund

जी लिखत ईया सिरी गंगाजी उते पूज घनश्यामदास, पूज जयरामदास, पूज बालमुकुंद, चेतराम, चिरंजीव मंघनमल, भगवान, बदरीदास लुंड, लिखी दिनासे मिश्र सालिगराम, मिश्र संतोखराम जोग लिखत संवत् 1924 मूजब श्री गंगा जी उते चेतराम लुंड आयो पूज घनश्यामदास जा अखर वाँचे कर पंहिंजा लिखी दिनासे

मिती पोष सुदी 3 संवत् 1938, (क्रिश्चियन वर्ष 1882)

द. चेतराम लुंड पूज जयराम दासाणी जी

Hindi writing of priest in Haridwar.

वासी शिकारपुर के, रहने वाले अमृतसर मुहल्ला हरी सिंह, चेतराम व मंघनमल, बेटे जैरामदास के, पोते घनश्यामदास के, पडोते चैनराय के, बालमुकुंद बेटे घनश्यामदास के, बदरीदास बेटे बालमुकुंद के, चेतराम पूज गंगाजी आये, मिती-पोष सुदी 3, संवत् 1938 (क्रिश्चियन वर्ष 1882)

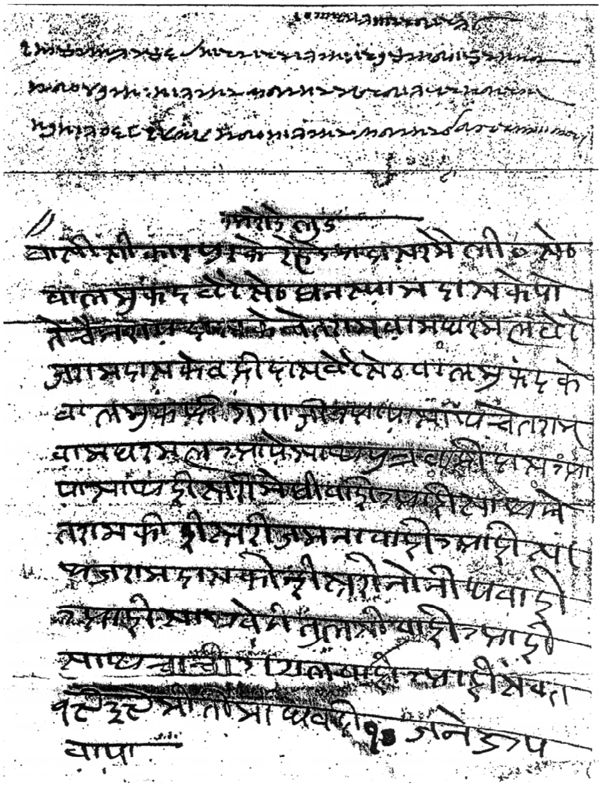

C.Y. 1883

Note 3 : This writing proves the year of death of Shri Ghanshyamdas the son of Sami Chainrai in the Christian Year – 1883

(S. Y. 1939).

Shri Manghanmal Jairamdas had gone with his relatives to Haridwar immediately after the death of Shri Ghamshyamdas Chainrai Lund to perform certain rites.

जेग सिरी रामजी सहायता कंदा।

जो अखर ईहे लिखी डिना मिश्र सालगराम-बालमुकंद चिरंजीव चेतराम, मंघणमल, बदरीमल लुंड, पूज घनश्यामदास जी हड्डी पायण आयासे, मिती माघ बडी 8 संवत् 1939 (क्रिश्चियन वर्ष- 1883)

Hindi writing of priest in Haridwar.

वासी शिकारपुर के रहै अमृतसर में लाला सेठ बाल मुकुन्द बेटे सेठ घनश्याम दास जी के, पौत्र श्री चैनराय जी के, चेतराम व मंघनमल बेटे श्री जयरामदास जी के, बालामुकुन्द जी श्री गंगाजी आये साथ में चेतरामजी व मंघनमल जी आये साथ पुत्र बद्रीदासजी आये साथ स्त्री मेधीबाई आयी साथ चेतराम जी की स्त्री आयी साथ जयराम दास की स्त्री नोनीध बाई जी आयी साथ बेटी तुलसी बाई साथ में चाची श्रीमती गगल बाई आयी सम्वत् 1939 तिथि माघवदी (कृष्ण पक्ष) तिथि 10 (दशमी)

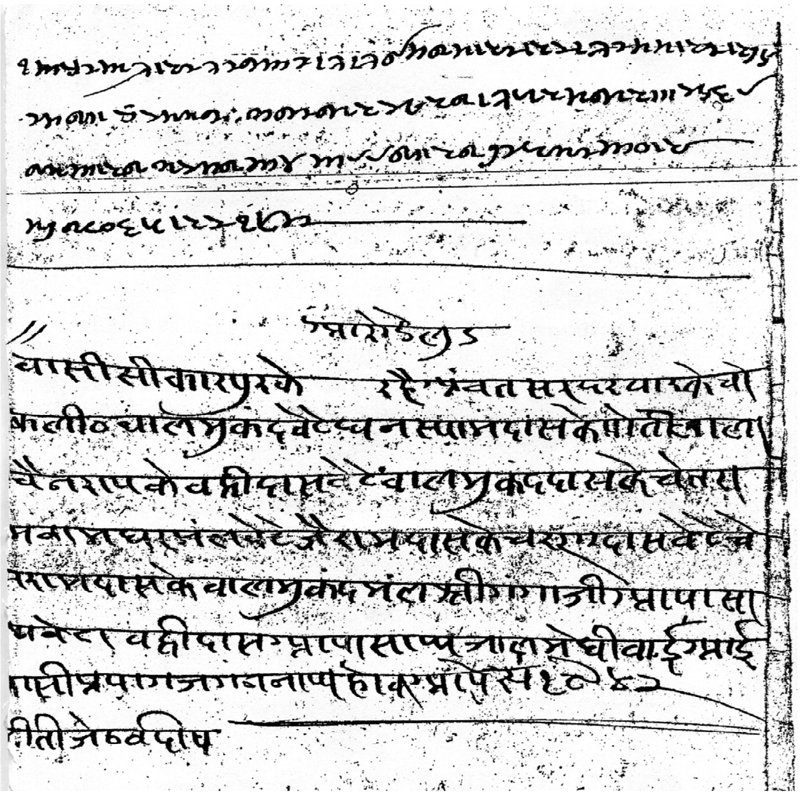

C.Y. 1886

Note 4 : It shows Haridwar visit in 1986 of Shri Balmukund who though originally from Shikarpur had settled down in Amritsar. His great grand son Mr. Radh a Krishan Multani (Lund) is a practising Chartered Account of Mumbai.

Sindhi (Hatai) writing of Shri Balmukund Ghanshyamdas Lund.

जी अखर ईये सिरी हरीद्वार गंगाजी उते मिश्र सालिगराम राम जोग, बालमुकंद, पूज घनशामदासानी लिखी दिना.................. अची उननि साणु पूजा तीरथ करे आया से मिती जेठ बडी 9 संवत् 1942, (क्रिश्चियन वर्ष 1886)

Hindi writing of the priest who performed Puja in the year 1886.

वसी शिकारपुर के, रहने वाले अमृतसर के, बालमुकन्द बेटे घनश्यामदास के, पोते लाला चैनराय, बद्रीदास बेटे बालमुकन्ददास के, चेतराम व मंघनमल बेटे जैरामदास के, चरणदास बेटे चेतराम के, बालमुकुंद श्री गंगाजी आये, साथ बेटा बद्रीदास आया, साथ जाल (पत्नी) मेंघी काशी, प्रयाग, जगन्नाथ होकर आये संवत् 1942 मिती जेठ वदी 9 (क्रिश्चियन वर्ष 1886)

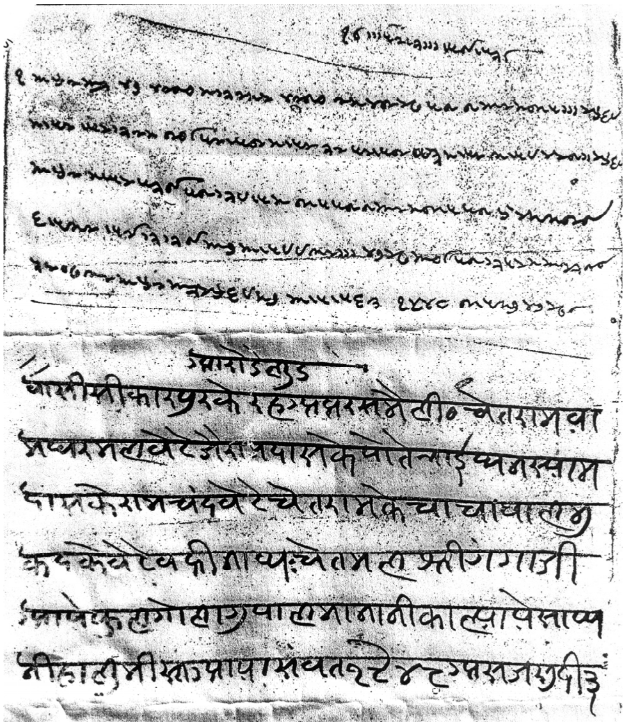

C.Y. 1892

Note 5 : This shows the visit of Shri Chetram Jairamdas Lund who had gone to Haridwar with younger brother Manghanmal and son Ramchand and Badridas to perform the last rights of Smt. Gagalbai (Grand Mother) in the Christian Year – 1892. Samvat Year 1948 month Ashadh.

Sindhi (Hatai) writing of Shri ChetramJairamdas Lund.

जी अखरईये चेत(राम) जा चिरंजीव मंघनमल, चिरंजीव रामचंद लुंड पूज जयरामदासानी लिखी दिना, मिश्र सालिगराम देवी प्रसाद, मिश्र हरीप्रसाद पुत्र मिश्र किशनलाल जोगा अखर मथल, पंहिजे पूज घनश्यामदास, पूज बालमुकंदजा अखर दिसी करे लिखी दिनासे श्री गंगाजी उते स्नान करण चेत (राम) लुंड आयो
पूज गगलबाईजा
गुल विजी करे, अखर लिखी दिना से
मिती आसो सुदी 3 संवत् 1948 (क्रिश्चियन वर्ष 1892)
द. चेतराम लुंड

Hindi writing of priest of Shri Chetram Jairamdas Lund

वासी शिकारपुर के रहनेवाले अमृतसर के चेतराम व मंघनमल बेटे जैरामदास के, पोतेभाई घनश्यामदास के, रामचन्द बेटे चेतराम के, चाचा बालमुकंद के बेटेबद्रीनाथ के साथ, चेतराम श्री गंगाजी आये, फूल गगलबाई नानी का गंगाजी में डालने के लिये आये संवत् 1948 आसो सुदी 3 (क्रिश्चियन वर्ष 1892)

Note : 06: C.Y. 1874

बद्रीनाथ के पंडित की बही से

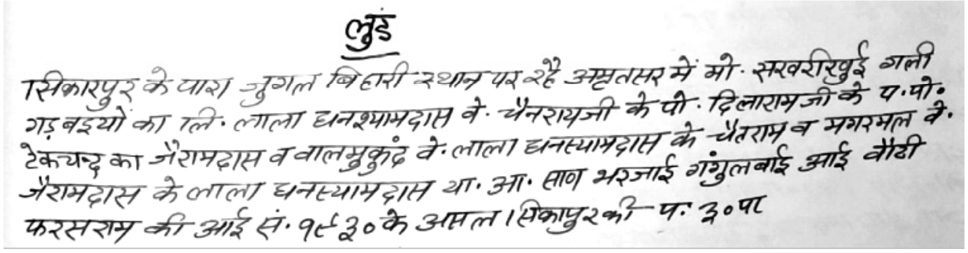

लुंड

सिकारपुर के पारा जुगल बिहारी स्थान पर रहै अम्रतसर में मो. सखरीखुई गली
गड़बइयो का लि. लाला घनश्यामदास बे. चैनरायजी के पौ. दिलारामजी के प.पो.
टेकचन्द का जैरामदास व बालमुकुंद बे. लाला घनस्यामदास के चैतराम व मगरमल बे.
जैरामदास के लाला घनस्यामदास या. आ. साण भरजाई गंगुलबाई आई वोटी
फरसराम की आई सं. १९३० के असल। सिकापुर की प. ३०पर

लुंड

सिकारपुर के पारो (मोहल्ला) जुगुल बिहारी स्थान पर, रहै अमृतसर में मो. सखरीखुई गली गड़वईयो का लि. (लिखनेवाला) लाला घनश्यामदास बे. (बेटे) चैनरायजी के, पो (पोते) दिलारामजी के प.पो. (परपोते) टेकचंद का, जैरामदास व बालमुकुंद बे. (बेटे) लाला घनश्यामदास के, चेतराम व मगरमल बे. (बेटे) जैरामदास के, लाला घनश्यामदास आ.या. साण भरजाई गंगुलबाई आई वोटी (पत्नी) फरसराम की आई सं. 1930 के असल सिकारपुर की प. (पन्ना) 30 पर

सिंधी महाकवि

सामी के श्लोक

(हिन्दी में अर्थ सहित)

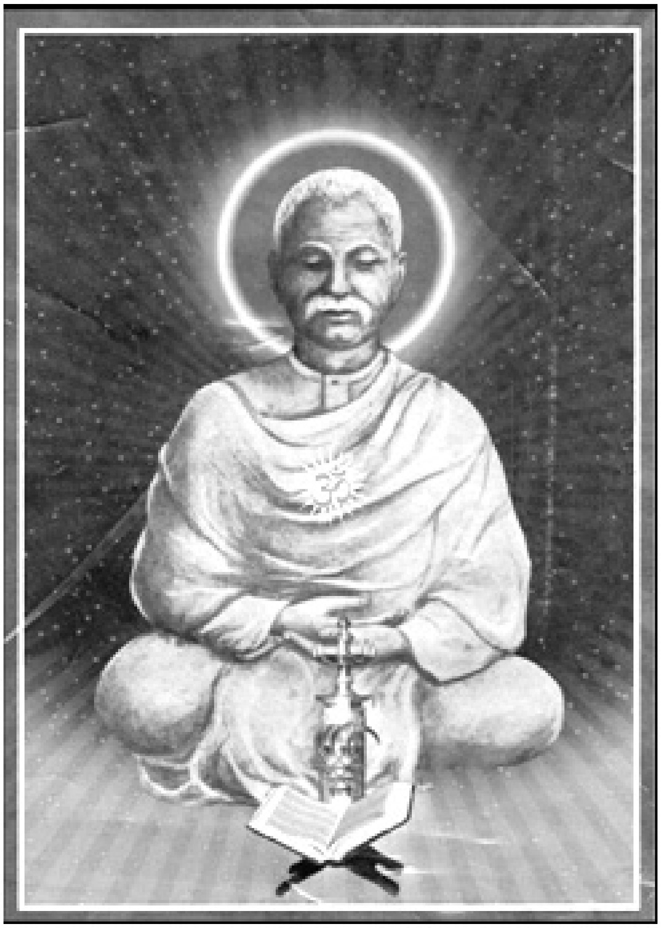

अजाइब कुदिरत, करता रची कल सां,
आदि-सकति खों देव टे, तनि खों थिया पंज तत,
ततनि खों विस्तारु थियो, सभ न्यारी नानत,
सैलु करे सभकंहिं जो, सामी बिना ममत,
लुड़ खे हणी लत, मोटी सुम्हियो सेज ते.

सृष्टि की रचना बड़ी ही विचित्र है। यह सृष्टि परब्रह्म ने अपनी व्यवहार कुशलता, कल्पना द्वारा प्रेमपूर्वक रची है। प्रारंभ में आदि शक्ति से तीन देवों (ब्रह्म, विष्णु, महेश) का निर्माण हुआ। उनमें से पाँच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का निर्माण हुआ। फिर इन पाँच तत्त्वों का विस्तार होकर यह विश्व निर्माण हुआ। इस विस्तार के कारण ही हमें भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं तथा द्वैत का आभास होता है। सृष्टि का निर्माता परब्रह्म अलिप्त होकर सभी वस्तुओं में मुक्त-भाव से (बिना किसी आसक्ति के) विहार करता रहता है। उसी समय सृष्टि के समूचे शोर से विमुख होकर परमेश्वर अपनी शय्या पर सो जाते हैं।

इस श्लोक में महाकवि सामीजी ने सारे विश्व में व्याप्त परब्रह्म का, परमेश्वर का, ईश्वरीय चेतना का वर्णन किया है। इसके साथ ही परमेश्वर के अनुभवातीत/विकल्पातीत (Transcendental) अवस्था का भी दर्शन करवाया है, जो विश्व से भी अति श्रेष्ठ है। परब्रह्म एक ही समय में निर्गुण एवं सगुण रूप धारण करने वाले हैं। ब्रह्म या परमेश्वर के तीन रूपों में से एक हैं ब्रह्मा या ब्रह्मदेव, जो इस सृष्टि के निर्माता हैं। भगवान विष्णु के नाभिकमल में ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। स्वयं को अकेला पाकर वे एक-एक करके चारों दिशाओं में घूम कर देखने से इनके चार मुख हो गये और चतुर्मुख कहलाने लगे। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय रूपी तीन मूर्तियों में स्थिति करने वाले भगवान विष्णु हैं। नार अथवा जल में स्थित होने के कारण विष्णु का नाम 'नारायण' है। अनेक चतुर्युगों के पश्चात् जब उन में सृष्टि करने की ईक्षणा-वृत्ति हुई, तब उन्होंने नाभि-ब्रह्मा को सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए तप करने को कहा। अनेक वर्षों की तपस्या के पश्चात् ब्रह्मा ने सृष्टि निर्माण की । भगवान विष्णु वैकुंठ में रहते हैं। शेषनाग इनकी शय्या है।

■

अण हूंदो संसारु, कलिपत करे सिधि थियो,
जिएं सुपने में सिधि थियो, नाना विधि वहिंवारु,
समुझी ॾिसु सामी चए, करे सुधु वीचारु,
त अविद्या जो अहंकारु, मिटी वञेई मन मों.

सामीजी इस श्लोक में कहते हैं, जो जगत् मूलरूप में है ही नहीं, वह भ्रम के कारण प्रतीत होता है। यह इस प्रकार भासमान प्रतीत होता है जिस तरह सपने के सभी व्यवहार सच्चे लगते हैं। वस्तुतः वे सच्चे नहीं होते। सामीजी कहते हैं कि हे मनुष्य तुम शुद्ध विचार कर यह समझने का प्रयत्न करो। सद्विवेक से विचार करने पर ही तुम्हारे मन से अविद्या/अज्ञान का अहंकार नष्ट हो जायेगा।

परब्रह्म सर्वव्यापक, सूक्ष्म एवं शाश्वत है। यह सारा दृश्य जगत परमेश्वर से ही निर्माण हुआ है और अंत में उसी में ही विलीन हो जाने वाला है। परब्रह्म या परमात्मा सृष्टि निर्माण होने के पहले भी था। उसके पूर्व सृष्टि नहीं थी। सृष्टि परब्रह्म की कल्पना द्वारा निर्मित है। जो सृष्टि पहले थी ही नहीं, वह परमेश्वर ने रची है। जिसका अस्तित्व नहीं है, वह अविद्या है। परमात्मा, जीव और जगत् के पारस्परिक संबंध के प्रति अज्ञान को अविद्या कहा जाता है। अविद्या आत्म-स्वरूप के ऊपर आवरण डाल देती है। इसी अविद्या के कारण से ही मोह, मान, राग, द्वेष, संशय आदि सब बाँधने वाले बंधन मनुष्य को बहुत पीड़ित करते हैं। अविद्या अनादि शक्ति है, जो संसार के आरंभ से ही चेतन पर आवरण रूप से पड़ी हुई है अर्थात् ज्ञान के स्वरूप पर पर्दा डालकर यह अविद्या उस जीव स्वरूप को ढक देती है। जिसके कारण से मनुष्य उसका स्वरूप पाने के लिए न जाने क्या-क्या सोचता रहता है। सांसारिक बंधनों को पहचानकर उन्हें त्यागने का प्रयत्न करना और अंत में अविद्या रूपी बंधन को भी छोड़ देना, यही मुक्ति रूप परम पद की प्राप्ति है। सामीजी इसी अविद्या के अहंकार को नष्ट कर डालने की बात करते हैं, जो यथार्थ है।

■

अथी महांगो, सामी सौदो पिरेम जो,
जे तो ख्वाहिश खरीद जी, त सटि सिर जो सांगो,
परिची पाइ ॻिचीअ में, गिला जो घांघो,
लंघे पउ लांघो, त मतिलबु थियई मन जो.

महाकवि सामी कहते हैं कि प्रेम का सौदा बड़ा ही महँगा होता है। यदि तुम्हें प्रेम का सौदा करने की, प्रेम खरीदने की इच्छा है तो पहले अपने सिर की, अपने प्राणों की चिंता छोड़ दो। अर्थात् तुम अपने प्राण न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाओ। दूसरे, लोक-निंदा सहने के लिए भी तुम तैयार हो जाओ। इस प्रकार यह प्रेम का सौदा मानो गहन नदी पार करने जैसा है। यह कठिन कार्य संपन्न करने के पश्चात् ही तुम अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकते हो।

प्रेम जगत का कारण है । क्यों कि परमात्मा स्वयं ही प्रेम स्वरूप है। सच्चे प्रेम द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति संभव है। सच्चा प्रेम करना अथवा सच्चा प्रेम पाना बड़ा ही कठिन कार्य है। प्रेम पाने के लिए, प्रेम का सौदा करने के लिए त्याग की नितांत आवश्यकता होती है। यह सौदा, क्रय-विक्रय का व्यवहार महँगा होता है। कुछ पाने के लिए कुछ देना भी पड़ता है। ईश्वर का प्रेम पाना है तो उसके लिए सर्वस्व त्याग करने की, अपने प्राण तक न्यौछावर करने की तैयारी होनी चाहिए। संत कबीर के शब्दों में,

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देई ले जाय।।

प्रेम-प्राप्ति की एकमात्र शर्त यही है कि अपना सिर देकर, प्रेम ले जाओ। चाहे राजा हो, चाहे प्रजा ; उसे इस प्रकार के त्याग के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। साथ ही लोक-निंदा सहने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। अन्यथा प्रभु को प्राप्त करना कठिन है। मीराबाई ने श्रीकृष्ण से सच्चा प्रेम किया। प्राणों की भी परवाह नहीं की। लोक-निंदा सहन की परंतु प्रेम के मार्ग में विचलित नहीं हुई। सदा ही श्रीकृष्ण के प्रेम में तल्लीन रही। संत कबीर के ही शब्दों में,

प्रेम प्रेम सबकोई कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावै सोय।।

परमात्मा से सच्चा प्रेम करना ही मनुष्य की बड़ी उपलब्धि है। सामीजी इसी प्रेम की ओर संकेत करते हुए, उसका महत्व प्रतिपादित करते हैं।

■

अबिनासीअ जो नासु, कॾी कदाचित न थिए,
आहे जंहिंजे आसिरे, धरिती धवलु आकासु
सूरिजु चंदिरु पाणी पवनु, तेज पुंज परिकास,
बेहदि रचे बिलासु, सइल करे सामी चए.

सामीजी के शब्दों में, 'निर्गुण निराकार परब्रह्म अविनाशी है। परब्रह्म का अंत कभी नहीं होता क्योंकि वह अमर है। उसके आधार पर ही यह पृथ्वी एवं निर्मल आकाश टिका हुआ है। विशुद्ध ब्रह्म के ही आधार पर सूर्य, चंद्र, जल, वायु एवं तेजःपुंज प्रकाश टिका हुआ है। इस प्रकार अविनाशी परब्रह्म अत्यंत विलास/आमोद-प्रमोद रच कर क्रीड़ा कर रहा है।'

ज्ञानस्वरूप परब्रह्म अविनाशी अनंत, निर्विकार एवं सीमातीत है। इस सृष्टि में एक शुद्ध, नित्य एवं पूर्ण परब्रह्म के सिवाय अन्य किसी का सच्चा अस्तित्व नहीं है। जो कुछ है, वह परब्रह्म ही है। परब्रह्म में अनंत शक्तियाँ हैं। वे सभी ब्रह्मस्वरूप ही हैं। उन में से एक अद्‌भुत शक्ति के कारण 'अहं' पैदा हुआ। यही मूल माया है, जिससे गुणाया का जन्म हुआ। उसके सत्व, रज और तम नामक गुणों में से 'तम' नामक गुण से पृथ्वी, आप (जल), वायु, आकाश और तेज नामक पंचमहाभूत निर्माणु हुए। उन पंचमहाभूतों के मिश्रण से यह दृश्य विश्व निर्माण हुआ। जड़ एवं आकारमय तत्व '**पृथ्वी-तत्त्व**' है, जिसके आधार पर सभी प्राणी जीवित है। जलमय तत्व '**आप-तत्त्व**' है, जिसके आधार पर सभी प्राणी जीवित हैं। जलमय तत्त्व '**आप-तत्त्व**' हैं, जिस पर सभी प्राणियों का जीवन निर्भर है। जो प्रकाशमय है, वह '**तेज-तत्त्व**' है, जिसके कारण जीव जीवित रहते हैं। जिसके कारण गति एवं चेतना मिलती है, वह '**वायु-तत्त्व**' है। दसों दिशाओं में फैला हुआ रिक्त स्थान ही '**आकाश-तत्त्व**' है। आकाश ही पंच महाभूतों में मुख्य है, उस में से ही सभी भूत (जीव) निर्माण होते हैं। हर स्थान पर होना आकाश का गुण है। पंचमहाभूतों का 'पंचीकरण' हो कर यह दृश्य जगत निर्माण होता है। महाकवि सामीजी इन पंचमहाभूतों का निर्माण एवं आधार परब्रह्म को ही मानते हैं। उनकी यह मान्यता वेदांत के अनुसार ही है। सामीजी वेदांत की व्याख्या करने वाले कवि हैं। यह श्लोक इसी बात का प्रमाण है। परब्रह्म परम महान तत्त्व है।

■

अविद्या जो अंतु, कंहीं पातो कीनकी,
लुढ़िया लोभ-लहर में, पीरु, अमीरु, महंतु,
लंघे चढ़ियो लख ते, को सुजाखो संतु,
भेद बिना भॻवंतु, सामी ॾिठो जंहिं सरब में.

सामीजी इस श्लोक में अविद्या के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अविद्या का अंत कोई नहीं पा सका है। अविद्या (अज्ञान) बेअंत है। अविद्या रूपी विशाल नदी में बड़े-बड़े लोग भी बह गये हैं। अविद्या की लोभ-लहर से कोई बच नहीं पाया है। इस में 'छोटे-बड़े पीर, संत, धनवान एवं महंत आदि भी बह गये हैं। अपवाद रूप में कोई बिरला सजग संत ही इस पार कर सका है। अर्थात् ऐसा संत, जिसने अपने मन से द्वैत का भाव निकाल कर संसार की हर वस्तु में भगवंत के दर्शन किये हों।

माया वह शक्ति है, जो निराकार एवं मुख्त परमात्मा को अनंत आकार देने वाली, उसे दृश्य के दायरे में बंद कर देने वाली तथा आत्म-स्वरूप के ऊपर आवरण/पर्दा डालने वाली है। इस आवरण/पर्दे का नाम है अविद्या या अज्ञान। अविद्या, अज्ञान, भ्रम, देहबुद्धि, लोभ आदि माया की प्रजा कही गयी है। दूसरे शब्दों में अविद्या, अज्ञान, अहंकार, विषय, संपत्ति, लोभ-लालच आदि माया के ही रूप हैं। माया के ये सभी रूप मिथ्या और नाशवान हैं। माया अस्थिर एवं नश्वर होते हुए भी उसके अनंत रूप हैं, जिनकी थाह कोई नहीं ले सकता। अविद्या/अज्ञान का भी कोई अंत नहीं है। उसकी थाह कोई भी नहीं ले सका है। यह दृश्य-जगत् अविद्या से व्याप्त है। अविद्या अनेक संशयों एवं भ्रमों को जन्म देने वाली है। अविद्या या अज्ञान के कारण ही मनुष्य/जीव झूठ को सत्य समझकर दुःखी होता रहता है। अविद्या के आवरण के कारण जीव परमात्मा को पहचान नहीं पाता। सभी मनुष्य माया, प्रलोभन आदि विकारों में लिप्त है। आत्म-स्वरूप को देख पाना कठिन हो गया है।

महाकवि सामीजी के विचारानुसार सच्चे संत ज्ञानी होते हैं। ऐसे संत विरल ही होते हैं, जिन्हें परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसे सच्चे संत परब्रह्म, परमात्मा सच्चिदानंद के दर्शन कर सकते हैं। ऐसे निर्मोही, निर्लोभी, निरहंकारी, निष्काम एवं अंतर्ज्ञानी संतों के संबंध में संत कबीर कहते हैं-

आशा तजि, माया, तजै, मोह तजै अरु मान।
हरष, शोक, निंदा तजै, कहै कबीर संत जान।।

■

अविद्या जो अहंकारु, भारी लग॒ो जीअ खे,
मने वेठो पाणहीं, अण हूंदो सन्सारु,
मिली साध-संगति सां, करे न सुधु वीचारु
साखी सिरजणहारु, सामी ड॒िसे कीनकी.

सामीजी कहते हैं, हमारे जी (मन) को अविद्या (अज्ञान, माया) से अहंकार हो गया है अर्थात् अविद्या के कारण मनुष्य में अहंकार का भाव आ गया है। परिणामस्वरूप वह इस अविद्यमान संसार को अपने आप सत्य मान बैठा है। अज्ञान के वशीभूत होने के कारण उसकी बुद्धि मलिन हो गयी है। फलतः वह साधुजनों के संग में, सत्संग में बैठकर कभी शुद्ध विचार नहीं करता। अविद्या, अज्ञान अथवा माया के आवरण के कारण वह साक्षी, सृजनहार सृष्टिकर्ता (ब्रह्म, परमात्मा) को नहीं देखता।

अविद्या का अर्थ है मिथ्या ज्ञान, अज्ञान, मोह। जिसके कारण माया का उद्भव होता है, उसे 'अविद्या' कहा जाता है। अविद्या सभी जीवों में, मनुष्यों में विद्यमान रहती है। अपवाद रूप में विरला कोई ज्ञानी पुरुष इस अविद्या से मुक्त होता है। अविद्या अथवा अज्ञान माया का वह आवरण/पर्दा है, जिसके माध्यम से माया मनुष्य/जीव के आत्मस्वरूप को ढँक देती है। दूसरे शब्दों में, अविद्या वह शक्ति है, जो कि शुद्ध ज्ञान स्वरूप चेतन को ढाँकती है। अविद्या की वृत्तियों के कारण जीव/मनुष्य अपने स्वरूप को पहचान नहीं पाता। वह अपने शरीर और इंद्रियों को 'मैं' समझने लगता है। उसमें महामोह की, भोग भोगने की इच्छा रहती है। भोगों की इच्छा पूरी न होने पर वह क्रोध से भर जाता है। अविद्या या माया के अधीन होने से जीव संसार के बंधनों में फँस जाता है। परिणामस्वरूप वह परमात्मा को भुलाकर इस चल-अचल संसार को ही सत्य समझने लगता है। अर्थात् इस मिथ्या जगत को सत्य समझ लेना अज्ञान है। अविद्या के कारण वह अपना विवेक खो बैठता है और परिणामस्वरूप वह संतों की संगति में रहकर न शुद्ध विचार करता है और न ही आत्मस्वरूप को, परमात्मा को पहचानने का यत्न करता है। सामीजी के विचारानुसार अविद्या का भूत सभी जीवों को नचा रहा है। अविद्या से अभिमान में डूबा हुआ मनुष्य परमात्मा को देख नहीं पाता।

■

अविद्या जो दरियाहु, कख कर्म लंघाइनि कीनकी,
तारि वहे तिख ताअ सां, अण हूंदो असिगाहु,
सामी ब॒ेड़ी सच जी, चपो करि, वेसाहु,
त सति गुरु मरदु मलाहु, पारि लंघाए पल में.

सामीजी कहते हैं कि मनुष्य को उसके तिनकों जैसे कर्म अविद्या रूपी दरिया (बड़ी नदी) के पार नहीं उतार सकेंगे। यह अविद्यमान दरिया बहुत ही गहन है और तीव्र गति से बह रहा है। उसके प्रवाह में डूब जाने से बचना है और दरिया पार करना है तो हे मनुष्य, तुम्हें सत्य की नाव में बैठना है। सत्य की नाव में बैठकर तुम विश्वास रूपी चप्पू (पतवार) हाथ में ले लो। उससे नाव चलाओ। ऐसा करोगे तब सद्गुरू रूपी केवट (माँझी, मल्लाह) तुम्हें एक क्षण में पार उतार देगा।

परमात्मा, जीव और जगत् के पारस्परिक संबंध के विषय में अज्ञान ही 'अविद्या' है। अविद्या के दो काम होते हैं- आवरण और विक्षेप। 'आवरण' का अर्थ है आत्म-स्वरूप को ढँक देना। 'विक्षेप' का अर्थ है आत्म-स्वरूप पर अन्य वस्तु का आरोपण करना। जीव में अविद्या विद्यमान होती है। ब्रह्म या परमात्मा ही एकमात्र सत्य वस्तु है। अविद्या खोटी या मिथ्या होने कारण उसके द्वारा कल्पित जीवत्व भी मिथ्या ही है। ऐसी अविद्या को दूर करना या उससे मुक्ति पाना आसान कार्य नहीं है। रूपक का आधार लेकर महाकवि सामी कहते हैं कि छोटे-मोटे अथवा क्षुद्र कर्म करके संसार रूपी सागर पार कर कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। तीव्र गति से बहने वाली अविद्या रूपी विकराल नदी को पार करने के लिए सद्गुरु की ही नितांत आवश्यकता होती है। सद्गुरु रुपी मल्लाह/माँझी ही आसानी से हमें पार करवा सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से अविद्या/अज्ञान को दूर कर आत्म-स्वरूप के दर्शन करवाने वाले सद्गुरु परमात्मा स्वरूप होते हैं। आध्यात्मिक विकास सद्गुरु के मार्गदर्शन से ही संभव है। सद्गुरु ही सच्चे शिष्य को आत्मज्ञान से लाभान्वित कर संसार-सागर पार करवाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सामीजी यही कहते हैं। संत कबीर का कथन भी इसी बात का प्रमाण है-

भौ सागर के त्रास से, गुरु की पकड़ो बाँहि।
गुरु बिन कौन उबारसी, भौ-जल-धारा माँहि।।

■

अविद्या बंदि किया, जीअ सभेई फास में,
भुली निज सरूप खों, सन्से मंझि पिया,
तिरिषिना जे दरियाह में, सामी वही विया,
अहिड़ा अंधा थिया, जो जाॻी ॾिसनि कीनकी.

अविद्या के प्रभाव का वर्णन करते हुए सामी जी कहते हैं, 'संसार के सभी जीवों को अविद्या ने अपने फाँस में फँसा लिया है। परिणाम स्वरूप संसार के जीव भ्रम में पड़कर अपने निज-स्वरूप को, आत्म-स्वरूप को भुला बैठे हैं। सभी मनुष्य तृष्णा/इच्छा रूपी दरिया (नदी) के प्रवाह में बह गये हैं। जगत् के जीव अविद्या के कारण इतने अंधे हो गये हैं कि वे मन की आँखें खोलकर परमात्म के स्वरूप को देख नहीं पाते।

आत्म-स्वरूप के ऊपर आवरण/परदा डाल कर उसे ढँक देने वाली शक्ति का नाम 'माया' है। इस परदे का नाम है अविद्या या अज्ञान । इसके कारण जीवात्मा (मनुष्य) सही अर्थ में 'ब्रह्म' होते हुए भी उसे अपने वास्तविक/यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। परिणामस्वरूप वह स्वयं को ब्रह्म/परमात्मा से अलग समझने लगता है। साथ ही वह अपनी देह (शरीर) को ही सत्य और सबकुछ समझने लगता है। अविद्या माया का ही रूप होने के कारण उसमें सत्य को ढाँकने की शक्ति विद्यमान होती है। मनुष्य में विपरीत मति उत्पन्न करना अविद्या का काम है। यह उल्टी समझ उत्पन्न करके संसार के सुख और उन सुखों के साथ मनुष्य में 'मैं' भाव को जन्म देती है। वह मनुष्य को भ्रमों में डाल देती है। फलस्वरूप मनुष्य इच्छाओं, कामनाओं, अभिलाषाओं के प्रवाह में बहने लगता है। अविद्या की शक्ति से सत्य ढँका ही रहता है। कुछ-का-कुछ मिथ्या होता हुआ भी उसे सत्य दिखाई नहीं पड़ता। सांसारिक पदार्थों में मिथ्या सुख रूप का अनुभव कराने वाली यही माया होती है। वह मनुष्य को सांसारिक सुखों की ओर खींचती है। इसी अविद्या अथवा माया को कबीर जैसे संतों ने 'महाठगिनी' कहा है। इसी माया या अविद्या को 'डायन' की उपमा दी है, जिसने संसार में द्वैत का भाव जाग्रत कर जीव को भुलावे में डाल दिया है। सारा संसार उसके बंधनों में बँध गया है. अविद्या ने मानो जीवों को अंधा बना डाला है। परिणामस्वरूप हम अपने भीतर विराजमान परमात्मा को, अपने निज स्वरूप को देख नहीं पाते।

■

आतम-रसु मिठो, अथी सभ रसनि खों,
वञी पुछु तनीं खों, चखे जनि ॾिठो
कियाऊं पाणु फिटो, सामी ॾिसी सरूप खे.

महाकवि सामी इस श्लोक में कहते हैं कि सभी रसों में 'आत्म-रस' (आत्मानंद) सबसे अधिक मधुर होता है। इस रस की मिठास जानना चाहते हो, तो जा कर उन श्रेष्ठ पुरुषों से पूछो, जिन्होंने यह रस चख कर देखा है, उसका आस्वाद लिया है। ऐसे महापुरूषों ने आत्म-स्वरूप को देखकर, परमात्मा के दर्शन मन में ही कर, स्वयं को उसके सामने समर्पित कर दिया है। (आत्म-साक्षात्कार आनंद-रूप होता है।)

परमात्मा आनंद स्वरूप है। अपने मन में परमात्मा का दर्शन करना भी आनंददायक होता है। आत्म-दर्शन, आत्मानुभूति, आत्मज्ञान, आत्म-प्राप्ति भी आनंद प्रदान करनेवाली होती है। 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूत होने पर साधक/जीव और ब्रह्म का ऐक्य हो जाता है। जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति के परे एक अद्‌भुत अवस्था की अनुभूति होती है, जिसे 'तुरीय' अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में साधक को एक अद्‌भुत आनंद की प्रतीति होती है, जिसे 'आत्मानंद', 'आत्म-सुख' कहा जाता है। महाकवि सामी ने इसे '**आत्म-रस**' कहा है। 'रस' का अर्थ आनंद है। 'आत्म-रस' शब्द आत्म-रस भौतिक साधनों से मिलने वाले सभी प्रकार के आनंद से मधुर एवं शाश्वत होता है। यह आनंद मौन, गहन एवं गंभीर होता है। आत्मा/परमात्मा के सौंदर्य को देखकर जीव/साधक को अपने शरीर की सुध/स्मृति नहीं रहती। आत्मा का ज्ञान हो जाने से जीव/साधक स्वयं समाप्त हो जाता है और शेष रह जाता है ज्ञान! आत्मानंद की इस अवस्था में अपने नेत्रों से अपनी मृत्यु स्वयं देखनी पड़ती है। आत्मा-परमात्मा के मिलन की इस अवस्था को 'जीवन-मुक्ति' कहा गया है। संत तुकाराम जैसे संतानें इस आत्म-रस, आत्मानंद का अनुभव किया है। सामी जी भी इस आत्म-रस की मधुरता एवं महत्व की मुक्त-कंठ से सराहना करते हैं।

■

आदि, वियादि, उपादि, टेई ताप लग॒नि हिन जीअ खे,
वही तनी जे वह में, सो जनम विञाए बादि
जाग॒ी करे न यादि, सामी सुपेरियुनि खे.

सामीजी जीवन के ताप-त्रय का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि मनुष्य/जीव को तीन प्रकार के ताप (दु:ख) भोगने पड़ते हैं। ताप-त्रय के प्रवाह में बहते हुए मनुष्य व्यर्थ ही अपना जीवन नष्ट कर रहा है। किन्तु वह जाग्रत हो कर प्रियतम पररमेश्वर को याद नहीं करता।

संसार में जो भी जन्म लेकर आया है, उस जीव/मनुष्य को सुख और दु:ख भोगना ही पड़ता है । सुख की अपेक्षा दु:ख ही अधिक भोगने पड़ते हैं। दु:ख मानो जीवन का एक अविभाज्य अंग है और वह कम या अधिक प्रमाण में सबको भोगना ही पड़ता है। दु:ख-रहित जीवन नहीं होता। पंच महाभूतों द्वारा, पृथ्वी, आप, अग्नि, तेज और आकाश द्वारा प्राप्त दु:ख मनुष्य को भोगने ही पड़ते हैं। वनस्पति, पशु, कीड़े आदि या मनुष्य प्राणी भी दु:ख देने वाले होते हैं। इन दु:खों को ही 'ताप' कहा गया है। शास्त्रों में तीन प्रकार के ताप या दु:ख बताये गये हैं, जिनका उल्लेख सामीजी ने उपर्युक्त श्लोक में किया है। ये ताप-त्रय इस प्रकार हैं-

(1) **आधि-** आधि ताप का अर्थ है मानसिक/मन का दु:ख, आंतरिक पीड़ा। कोई चिंता लगी रहना, मन क्षय से ग्रस्त होना, असफलता मन में चुभती रहना, भ्रम/भ्रांति, स्मृति-भ्रंश, काम क्रोधादि विकारों में मन व्याप्त रहना, बेचैनी आदि मानसिक वेदनाएँ 'आधि' दु:ख या ताप हैं।

(2) **व्याधि-** व्याधि का अर्थ है रोग, बीमारी । मनुष्य के ये दैहिक ताप या दु:ख हैं। अनेक प्रकार के ज्वर/बुखार, रक्त-दोष के कारण होने वाले रोग, देह के भीतरी अवयवों का शोषण, सूजन, दमा, हृदय-रोग, बुढ़ापे के दु:ख आदि शारीरिक ताप हैं।

(3) **उपाधि-** शरीर के बाहरी दु:ख या भौतिक दु:ख 'उपाधि' ताप कहे जाते हैं। अन्य प्राणियों द्वारा मनुष्य को मिलने वाले ताप, मनुष्य को मनुष्य द्वारा ही मिलने वाले ताप, झगड़े-फिसाद, युद्ध, बाढ़, भूकंप आदि के कारण मनुष्य को मिलने वाले दु:ख इसके अंतर्गत आते हैं। इन्हें दैवी/ईश्वरीय ताप भी कहा जाता है।

सारांश, ये त्रिविध ताप हैं। कोई भी प्राणी इनसे छुटकारा नहीं पा सकता। इन दैहिक, दैविक और भौतिक तापों के सहन करने में ही मनुष्य जीवन व्यतीत हो जाता है।

■

आयो नागर नटु, बेखु करे बाजारि में,
ब॒ांभणु चवे ब॒ियाईअ रे, कढी वेठो हटु,
पाण वापारी वणिजु थियो, पाण ताराजी वटु,
रइयत राजा पाण थियो, कांइरु सुरु सुभटु,
पाण कुंभरु आवी बणियो, चाकु मिटी घटु मटु,
पाण फूल फलु पथरु थियो, पाण ड॒ार ब॒िजु बटु,
अंदरि ब॒ाहरि दह दिसा, खेले गुप्तु परघटु,
परिची खोले पटु, पाण लखाए पाण खे.

परमेश्वर के विविध रूपों का वर्णन करने के लिए उन्हें एक नट/अभिनेता की उपमा देते हुए सामी कहते हैं, नाट्य-कला-निपुण नट (परमेश्वर) वेश/भेस धारण कर बाजार (संसार) में आया है। वह बिना किसी भेद-भाव के हाट/दुकान खोलकर बैठा है। अनेक भूमिकाएँ निभाने वाला परमेश्वर रूपी नट कभी व्यापारी बनता है तो कभी व्यापार बनता है। वह स्वयं ही तराजू और बाट (बट्टा/तौल) बन जाता है। परमेश्वर स्वयं ही कभी प्रजा बनता है तो कभी राजा। कभी वह योद्धा एवं वीर बनता है तो कभी कायर, भीरु या डरपोक! वह कभी कुम्हार बनता तो कभी भट्ठा। कभी कुम्हार का चाक बनता है तो कभी मिट्टी, घट और माट। परमात्मा कभी फूल, फल और पत्ता/पर्ण बनता है तो कभी डाली, बीज और वृक्ष। विविध रूप धारण करने वाला परमेश्वर भीतर और बाहर तथा दसों दिशाओं में प्रकट एवं गुप्त रूप में खेल खेल रहा है। वह अपना पटल/आवरण खोलकर स्वयं को दिखला रहा है।

परब्रह्म परमेश्वर एक है परंतु अपने एक रूप से वह अनेक रूप, अनंत रूप धारण करने वाला है- 'एकोऽहम बहुस्याम' गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन' को अपने विश्व रूप का, विभूतियों का बोध कराया है। परमेश्वर की अनंतता, असीमता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता श्रीकृष्ण के ही मुख से सुनने पर अर्जुन का मोह दूर हो जाता है। वस्तुतः परब्रह्म/परमेश्वर सर्वकर्ता एवं विश्व का संचालक है। वही विश्व के चेतन एवं अचेतन पदार्थों में विद्यमान है। सभी जीवों के हृदय में परमात्मा ही आत्मा के रूप में स्थित है। सर्वगुण संपन्न परमात्मा ही सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। संसार में एकमात्र परमेश्वर की ही सत्ता है और वही सब कुछ है।

ऐसे परमेश्वर के सगुण रूप का वर्णन महाकवि सामी अपने श्लोक में करते हैं। उसे एक नट की उपमा दे कर, उसकी लीला का वर्णन करते हुए रूपों का, भूमिकाओं का चित्रण किया है। 'एकपात्रीय' नाटक करने वाला नटपरमात्मा विविध भूमिकाएँ निभा रहा है!

■

आशिक कीन लिकनि, सूरज जां हिन लोक में
सदा अलबेलनि जां, रता नेण रहनि,
काणि न कढनि कांहिंजी, सूरी पिणि सहनि,
अठई पहर विहनि, सामी सुपेरियुनि सां.

परमेश्वर से प्रेम करने वाले सच्चे प्रेमियों के लक्षण और विशेषताएँ बतलाते हुए सामी कहते हैं- 'प्रभु के प्रेमी (आशिक) इस संसार में कहीं भी कभी छिपते नहीं हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार इस लोक में सूर्य छिप नहीं सकता। सच्चे ईश्वर भक्तों के नेत्र अलबेले मस्तानों की भाँति प्रेम के रंग में रंगे हुए रहते हैं, आरक्त रहते हैं। प्रभु-प्रेम का खुमार उनके आरक्त नेत्रों से ही झलकता रहता है। वे किसी के उपकार में नहीं रहते, किसी के मुहताज नहीं होते। वे तो सूली पर भी चढ़ने को तैयार रहते हैं। ऐसे ईश्वर प्रेमी अपने प्रियतम परमात्मा के साथ आठों प्रहर बैठे रहते हैं।

प्रेम (इश्क) के दो प्रकार माने गये हैं- लौकिक और अलौकिक प्रेम। इनमें अलोकिक प्रेम की महत्ता अधिक मानी गयी है। प्रेम की क्षुधा या भूख हृदय की होते हुए भी प्रेम की प्यास 'आत्मा' की होती है और होनी भी चाहिए। प्रेम यानी ईश्वर अथवा ईश्वर यानी प्रेम । ईश्वरीय प्रेम अध्यात्म का अनिवार्य तत्त्व है। सगणु परमात्मा और जीव के निष्काम प्रेम-संबंध को 'भक्ति' कहा जाता है। परमेश्वर से अनंत अनुराग भक्ति है। जिसके मन में परमेश्वर के प्रति प्रेम-भाव है, वह परमेश्वर के अति निकट है। क्यों कि परमेश्वर स्वयं ही प्रेम है। परमात्मा से अनन्य एवं निष्काम प्रेम करने वाले प्रेमी की ज्योति जगा कर प्रभु के दर्शन करते हैं। मीराबाई का श्रीकृष्ण से ऐसा ही सच्चा प्रेम था। ऐसे प्रेमी प्रभु के प्रेम रूपी सागर में डुबकी लगा कर अनंत सुख और आनंद के मोती प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे प्रेमी जन सूर्य की भाँति स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं; वे कही छिपकर नहीं रह सकते।

भक्ति करे पाताल में, प्रकट होवै आकास।
'रज्जब' तीनों लोक में, छिपे न हरि का दास।।

महाकवि सामी भी ऐसे ही प्रेमियों का/भक्तों का वर्णन करते हैं। ऐसे भक्तों को पहचानने के लक्षण बतलाते हुए सामी कहते हैं कि उनके आरक्त/लालिमा लिये हुए लाल नेत्रों से पता चल जाता है कि ये सच्चे ईश्वर-भक्त हैं, जिनके नेत्रों से ईश्वर-प्रेम छलकता हुआ दिखाई देता है।

जो जन प्रेमी राम के, तिन की गति है येह।
देह से उद्यम करे, सुमिरन करे विदेह।।

अंधा कनि अभिमान, काया माया कुल जो,
कालु न ड्सिनि कंध ते, कश्यो बीठो कानु,
विरलो को गुरमुख रहे, सामी सावधानु,
जंहिंखे आतमग्यानु, सुतह ड्निो सतिगुरूअ.

अज्ञानी मनुष्यों के संबंध में सामी जी कहते हैं कि ऐसे अंधे/अज्ञानी मनुष्यों को अपने शरीर, अपनी माया(धन-दौलत) और अपने कुल (वंश, खानदान) का बड़ा अभिमान/अहंकार रहता है। ऐसे अज्ञानी लोग काल/मृत्यु को देख नहीं पाते, जो उनके कंधे पर बाण/तीर कस कर खड़ा है, किन्तु विरला कोई गुरुमुख होगा, जिसे सद्‌गुरु ने आत्मज्ञान दिया है और फलस्वरूप सावधान हो गया है।

'मैं' और 'मेरा' शब्द अभिमान/अहंकार के प्रतीक हैं। 'मैं', 'मैं' कहना अभिमान सूचित करता है। - 'अहं कारयति इति अहंकार'। अहंकार के कारण 'मैं' देह हूँ का भाव दृढ़ हो जाता है। अभिमान के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के भ्रमों में पड़ जाता है। वह समझने लगता है कि 'मैं ही करने वाला और भोगने वाला हूँ।' ऐसे अभिमानी मनुष्य अज्ञानी एवं मूर्ख होते हैं। सद्‌गुरु के ज्ञान के बिना, अपनी अंतरात्मा को पहचान सकने की दृष्टि उन में नहीं होती। परिणामस्वरूप ऐसे अभिमानी अंधे लोग अपने शरीर, धन दौलत और उच्च कुल पर अभिमान करते रहते हैं। अर्थात् ऐसे अभिमानी मनुष्यों को अपने आत्म-स्वरुप का ज्ञान/बोध हो पाना कठिन होता है। देह, माया और कुल के विचार से परे हट कर आत्मा-परमात्मा के विषय में सोचने की सामर्थ्य उन में नहीं होती। ऐसे अभिमानी जीव अपनी मृत्यु को अपने निकट देख कर भी देख नहीं पाते। अहंकार/अभिमान ने उनकी आंखों पर आवरण/परदा डाल दिया होता है। अत: वे मृत्यु को देख नहीं पाते।

सामी जी कहते हैं कि अपवाद रूप में कोई ऐसा गुरुमुख (गुरु से मंत्र लेने वाला, दीक्षित) होगा, जो सावधान होता है, जिसे सतगुरु द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त हुआ होता है। ज्ञान का सूर्य कहे जाने वाले सद्‌गुरु अपने शिष्य के अज्ञान रूपी अंधकार को सदा के लिए दूर कर देते हैं। ऐसे शिष्य को न अभिमान स्पर्श कर पाता है और न ही मृत्यु का भय भयभीत कर पाता है । सद्‌गुरु अपने सत् शिष्य को पूर्णता प्रदान करते हैं। सत् शिष्य सद्‌गुरु से एकाकार होकर विशाल बन जाता है। वस्तुत: सद्‌गुरु स्वयं अमृत होते हैं और वे शिष्य को अमर-पद पर विराजमान करते हैं।

काल फिरै सिर ऊपरै, हाथौं धरी कमान।
कहै कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकता अभिमान।।

■

करियां कहिड़ो हालु, दरदवंदनि जे दिलि जो,
कुठा कुछनि कीनकी, लिंव लाए थिया लालु,
सदिके कयाऊं सिक तों, सामी तनु मनु मालु,
तनि खे कोहु करींदो कालु, जे मरण खों अग॒ मुआ.

परमेश्वर के विरह में तड़पने वाले प्रेमीजनों के मन की दशा का वर्णन करते हुए सामीजी कहते हैं कि मैं ऐसे दरदवंत/दुखी/पीड़ितजनों के मन का हाल कैसे बताऊँ? प्रभु के प्रेम में मारे गये प्रेमी अपने मुख से एक अक्षर भी नहीं निकालते। वे मात्र प्रभु के प्रेम में मग्न हो कर लाल हो जाते हैं। परमात्मा के प्रेम को पाने के लिए उन्होंने अपना तन, मन और संपत्ति न्यौछावर कर दी है। ऐसे सच्चे प्रेमियों/भक्तों को भला काल (मृत्यु) भी क्या कर सकता है? ऐसे प्रेमी तो मृत्यु के पहले ही सर्वस्व समर्पण कर देते हैं।

प्रेम ईश्वरीय देन है। प्रेम का अर्थ है समर्पण, अपने सर्वस्व का समर्पण । भक्ति का दूसरा नाम प्रेम है। भक्ति का अर्थ है ईश्वर से प्रेम । यह प्रेम मुक्ति का द्वार खोलने वाली चाबी/कुँजी है। यह प्रेम परम सुख प्रदान करने वाला होता है। अंतरात्मा के लिए व्याकुलता या तड़प का भाव निर्माण होना ईश्वर-प्रेम है। परमेश्वर के दर्शन के लिए, प्रभु से मिलने के लिए लालायित या उत्कंठित होना प्रेम का ही लक्षण है। जीवात्मा का परमात्मा से मिलने के लिए तड़पना स्वाभाविक ही है। किन्तु विविध व्यवधानों अथवा विकारों के कारण जीवात्मा परमात्मा से बिछड़ जाने के कारण दुखी है। विरहावस्था की भावनाओं का यथार्थ वर्णन अनेक संत-कवि एवं भक्त-कवि अपने काव्य में करते हुए दिखाई देते है। मीराबाई ने अपने पदों में इसी विरहावस्था का, व्यथा या दर्द का चित्रण किया है 'ए री, मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोई। सूफ़ी कवयित्री राबिया ने भी अपनी कविता में इसी प्रेम के दर्द का वर्णन किया है। प्रभु-प्रेम में पगला गये प्रेमियों का प्रेम भीतर ही भीतर प्रभु में निमग्र रहता है। उन्होंने अपना मन मार लिया होता है। मन से सभी प्रकार के विकार निकाल कर मन खाली कर लिया होता है। उनके अंत:करण में केवल प्रियतम परमेश्वर का ही निवास होता है। उनके जीवन में बस वह प्रेमी और प्रियतम का ही स्थान होता है। ऐसे अनन्य प्रेम में अन्य किसी को स्थान कहाँ?

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन में गई, मैं भी हो गई लाल।।

■

करे नाचु, नटी, माया मोहे सभ खे,
छॾे पीर फकीर खे, पापिणि पाड़, पटी,
संतनि विधसि समुझी, ॻिचीअ में ॻुटी,
वेठा खेप खटी, सुञ वसंव जे विच में.

माया को नटी (नचनिया, नटिनी, नाटक करने वाली स्त्री) की उपमा देते हुए महाकवि सामी कहते हैं- माया नटनी ने नाटक/नृत्य/खेल करते हुए संसार के सभी मनुष्यों को मोह लिया है। पापिनी माया किसी को नहीं छोड़ती। यहां तक कि पीर, फकीर या साधु पुरुष का भी समूह नाश कर देती है। किन्तु सच्चे संतों ने उसे पहचान कर उसके गले में अड़गाड़ा बाँध दिया है, परिणाम स्वरूप माया संतों के अधीन हो गयी है। मानो संतों ने बड़ी विजय प्राप्त की और अब वे शून्य तथा आबादी के मध्य में स्थित है।

अद्वैत वेदांत में निर्गुण ब्रह्म को ही सारे जगत का आधार माना गया है। माया को कभी ब्रह्म की शक्ति कहा गया है तो कभी 'उपाधि', अर्थात् एक ऐसी वस्तु जो जितने स्थानों पर होती है, उन स्थानों की वस्तुओं का ज्ञान करा कर अलग हो जाती है। अद्वैत सिद्धांत में माया त्रिगुणात्मक, नामरूपमय और सारे विश्व की बीज-शक्ति मानी गयी है। माया से मिल जाने के कारण ब्रह्म/परमेश्वर बहुरंगी एवं सगुण रूप में भासमान होता है। इसी रूप में वह जगत् का कारण भी बनता है। माया त्रिगुणात्मक, भावरूप, अज्ञानमय और वर्णनातीत मानी गयी है। बाद वाले अद्वैत साहित्य में माया की दो शक्तियाँ बतायी गयी हैं- आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। आवरण-शक्ति को कभी-कभी 'अविद्या' कहा जाता है और विक्षेप शक्ति को 'माया' । माया जगत का कारण होने से इसे 'प्रकृति' भी कहते हैं।

निर्गुणवादी एवं सगुणवादी संतों के काव्य में 'माया' का वर्णन मिलता है। संतों ने 'माया' शब्द का प्रयोग 'भ्रम' के लिए किया है। संत कबीर के लिए माया 'ब्रह्म की फँसरी' है। वह मोहिनी और 'महाठगिनी' है। इसके वश में होने के कारण जगत् भ्रम में पड़ गया है। माया ही मनुष्यों को भ्रष्ट बनाती है। यही जीवों को 'राम' से विलग कर देती है। तृष्णा स्वरूप माया ज्ञान द्वारा, अंतर्ज्ञान द्वारा, सद्‌गुरु की कृपा से नष्ट हो जाती है।

सामी साहब ने माया को नटी/नटनी की उपमा देकर उसके मोहक स्वरूप का वर्णन कर मनुष्य जाति के लिए विनाशकारी बताया है। माया के प्रभाव से मात्र ब्रह्मज्ञानी और अंतर्ज्ञानी ही बच पाते हैं।

■

करे भावु भगति, सामी तरु संसारु तूं,
ब्रेड़ी करि वेसाह जी, चपो महबत मति,
सतिगुरु पुरुखु मलाहु करि, पतणु कढ कुमति,
साखी ज़ाणी सति, त पहुचें पारि भरम खों.

मनुष्य मात्र को उपदेश करते हुए महाकवि सामी कहते हैं कि 'हे मनुष्य ! तुम परमात्मा की भक्ति करके यह भवसागर तैरने का, मुक्ति पाने का प्रयास करो। इस महत् कार्य को संपन्न करने के लिए तुम विश्वास-रूप नाव ले लो, जिसका चप्पू (पतवार) प्रेम का हो। ऐसी नाव में बैठो, जिसके चलाने वाले स्वयं सद्‌गुरु हों। इसके लिए तुम कुमति रूप, बुरी मति रूप उतराई (नाव द्वारा पार उतारने का किराया) निकाल ले। उसके पश्चात् सत्य (परमेश्वर) को साक्षी मानकर यात्रा करोगे तो भ्रम/भ्रांति के पार पहुँच जाओगे।'

परमार्थ या अध्यात्म में भक्ति की बड़ी महिमा है। परमात्मा के प्रति प्रेम ही भक्ति है। परमेश्वर की अहंशून्य सेवा भक्ति है। जीव या भक्त के हृदय में यदि भक्ति की भावना नहीं होगी तो मात्र विद्वत्ता अथवा जप-तप का कोई महत्व नहीं रह जाता । नारदीय भक्ति प्रेम-स्वरूप एवं अमृत-स्वरूपा है। वह प्राप्त हो जाने पर मनुष्य अमर हो जाता।

मनुष्य का उद्देश्य संसार सागर को पार कर मोक्ष-मुक्ति की प्राप्ति करना है। इसके लिए इस असत्य, मिथ्या, भ्रममय संसार से बाहर निकल कर आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करनी है। भीतर से अंधकार, अज्ञान दूर करना है। तभी जीव या साधक आगे बढ़ सकेगा। यह बात समझाने के लिए सामी साहब एक रूपक का प्रयोग करते हैं। संसार का सफर ऐसा है, जैसे नाव द्वारा नदी पार की जाती है। संसार रूपी दरिया पार करना बड़ा ही कठिन कार्य है। इसके लिए सत्य की नाव और नाविक के रूप में सद्‌गुरु की आवश्यकता है। परमेश्वर का स्मरण कर आगे बढ़ना है। अपने मन से बुरे विचार एवं विकार त्याग कर सद्‌गुरु के सहारे अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है। सद्‌गुरु की कृपा मनुष्य के उत्थान के लिए कारणीभूत बन जाती है। क्यों कि सद्‌गुरु साक्षात् परमेश्वर-स्वरूप होते हैं। सामी साहब ने परोक्ष रूप में सद्‌गुरु कृपा एवं मार्गदर्शन के महत्व को रेखांकित किया है। सद्‌गुरु की कृपा से सामान्य मनुष्य भी असामान्य पद-प्राप्ति का अधिकारी बन सकता है, अपना जीवन सार्थक कर सकता है।

■

केड़ी वड़ाई, गुणियां पुरिख दयाल जी,
जंहिं रखी हथु मथे से, ममत मिटाई,
मूरत महबूबनि जी, अनभव में आई,
सामी सभोई, विसु वसे जंहिं आसिरे.

सामी जी अपने सद्गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं- मैं दयालु सत्पुरुष/सद्गुरु की महिमा किन शब्दों में गिनाऊँ ? मेरे सद्गुरु ने मुझ पर कृपा की और अपना हाथ आशीष स्वरूप मेरे माथे पर रख दिया। सद्गुरु ने अपनी कृपा से मेरे अंदर की ममता (आसक्ति, मोह आदि) मिटा दी। उससे मेरा मन विकार-रहित बन गया। फलस्वरूप मुझे प्रियतम परमेश्वर की अनुभूति हुई। तब मुझे ऐसे परब्रह्म-परमेश्वर की अनुभूति हुई, जिसके आधार पर यह विश्व बसा हुआ है।

हमारी संस्कृति की गढ़न-गठन में संतों का योगदान बहुमूल्य माना गया है। जगत् में जीव का हित साधने वाले दो हैं- एक श्रुति ग्रंथ और दूसरे संत जन। श्रुति-ग्रंथ दुर्बोध हैं। पर संतों की सीख सुबोध है। आत्मज्ञान प्राप्ति के क्षेत्र में संतों क बड़ा महत्व है और इन में सद्गुरु का भी समावेश होता है, जो आत्म साक्षात्कार कराने में सहायक होते हैं। सद्गुरु ही मनुष्य को, शिष्य अथवा साधक को तुम परमात्मा का रूप हो इस सत्य का बोध कराने वाले होते है। अपने निज स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न करो। परमात्मा तुम्हारे अंदर ही है। उसको पहचानो। ''अपने मन को निर्मल, शुद्ध बनाओ। विकार रहित मन से प्रभु की भक्ति करो।'' इस प्रकार सद्गुरु की शरण में जाने से शिष्य के मन का अंधकार/अज्ञान दूर हो सकता है। सद्गुरु परब्रह्म, परमात्मा का अनुभव कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। सद् शिष्य को सद्गुरु परमात्मा का साक्षात्कार करा सकते हैं। सद्गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए संत कबीर कहते हैं,

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष समान।
तीनों लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्ही दान ।।

गुरु देने वाले होते हैं और शिष्य लेने वाला। गुरु अपने शिष्य को तीनों लोकों की सम्पत्ति प्रदान करने वाले होते हैं। महाकवि सामी इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि सद्गुरु ही परब्रह्म, परमेश्वर के दर्शन कराने वाले होते हैं। इस दृष्टि से गुरु/सद्गुरु की महिमा अनंत है।

■

केॾी वॾाई, ॻुणियां सापुरिसनि जी,
सम दरसी सीतल सदा, सभ जा सुखदाई,
ममता, मैलु अंदर में, रखनि न राई,
सामी सदाई, कनि उपकार अथाह थी.

सामी साहब कहते हैं कि मैं सत्पुरुषों की, संतों की बड़ाई (महिमा) कहाँ तक गिनाऊँ ? सत्पुरुष/संत समदर्शी और शीतल स्वभाव वाले होते हैं। संत सबको सुख देने वाले होते हैं। वे अपने मन में राई जितनी भी ममता और मैल नहीं रखते । संतजन सदा ही सब पर अथाह उपकार करते रहते हैं।

संत समाज का सौंदर्य, गौरव और मार्गदर्शक होते हैं। संतों की महिमा और महानता का यथार्थ वर्णन कर पाना कठिन है। फिर भी संतों की बड़ाई शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। संतों की यात्रा आत्म-विकास से समाज-विकास और आत्मज्ञान से अध्यात्म की ओर रही है। 'जैसी करनी, वैसी कहनी' का तत्त्व उनके जीवन-व्यवहार में दिखाई देता है। उनकी यह धारणा और सीख थी कि आत्मा की उन्नति ही मानव-जाति का अंतिम उद्देश्य है। इसलिये उन्होंने भक्ति रस को अधिक महत्व दिया। संत तुकाराम के शब्दों में, '**जे का रंजले गांजले। त्यासी म्हणे .. आपुले। तोचि साधू ओळखावा।**' अथवा '**कबीरा, सोई पीर है, जो जानै पर पीर।**' ये उक्तियाँ ही भक्तियोग का सार है। यही सच्चे संतों के लक्षण हैं। संत लोक में रहते हुए भी मन से निवृत्त होते हैं। संसार में रहते हुए भी नहीं रहते। फिर भी वे लोक-कल्याण के लिए छटपटाते रहते हैं। संत स्वयं पीड़ा, यातना, दुख सह कर लोक के लिए, मनुष्य मात्र के लिए कठिन भव-नदी पार करने के लिए सेतु बाँधते हैं।

मराठी संत समर्थ रामदास स्वामी ने समदृष्टि धारण करने वाले को संत कहा है- '**समदृष्टि तो संत**'। संत एकनाथ कहते हैं कि 'साधु-संत निरपेक्ष होते हैं। वे निरिच्छ होते हैं। उनका चित्त परमेश्वर में लगा रहता है। वे मनुष्य-देह धारण करते हुए भी विदेह होते हैं। वे परोपकारी होते हैं।' महाकवि सामी भी इसी प्रकार की बात करते हैं। शीतल स्वभाव वाले, समदर्शी संत सदा लोक-कल्याण और मानव-जाति के उद्धार की कामना करते हैं।

सरवर, तरुवर, संतजन, चौथा बरसे मेह।
परमारथ के कारने, चारों धरी देह ।।

■

केतिरी गुणियां, महिमा साध-संगति जी
सिद्ध साधक जोगी जती, गावनि सहस फणियां
जनक सनिक सुकदेव दत्त, सामी दास बणियां
जनि खे वाक वणियां, से सभई सुधिरिया.

सामीजी कहते हैं, ''मैं साधु-संतों की संगति की महिमा का क्या वर्णन करूँ? साधु-संतों की महिमा तो सिद्ध पुरुष, साधक जन, योगी, यती (वैरागी, सन्यासी) और सहस फनों वाला सेष नाग भी गाते हैं। स्वयं राजा जनक, महर्षि सनक, व्यासजी के ज्ञानी सुपुत्र शुकदेव, ऋषि दत्त (दत्तात्रेय) आदि भी साधु-संतों के दास (सेवक) बने हैं। ऐसे आत्मज्ञानी एवं ब्रह्मज्ञानी संतों की संगति में जिन मनुष्यों को उनके अमृत-वचनों का लाभ प्राप्त हुआ है, वे सभी सुधर गये, उनका जीवन सफल हो गया।

भक्ति-मार्ग के सिद्ध पुरुषों को 'संत' कहा गया है। भगवान के भक्त, परोपकारी एवं साक्षात्कारी संत को 'साधु' कहते हैं। साधु-संतों की बड़ी महिमा है। संतों के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। मनुष्य-समाज को मोक्ष प्राप्त करने का, आत्म-उद्धार करने का आसान मार्ग (नाम-स्मरण, नाम-भक्ति) दिखाने वाले संत आत्मज्ञानी एवं ब्रह्मज्ञानी होते हैं। परब्रह्म, परमेश्वर का साक्षात्कार भी संतों की कृपा से संभव है। संत ही आत्मज्ञान करा सकने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आत्मज्ञान का दान दे कर संत मनुष्य के लिए मुक्ति का मार्ग खोल देते हैं। परोपकारी संतों की संगति प्राप्त होना भी भाग्य का लक्षण है।

ज्ञानेश्वरी, एकनाथी भागवत ग्रंथ, नामदेव-तुकाराम आदि संतों की कविता में संतों की महिमा एवं सत्संग की बड़ाई का वर्णन किया गया है। समर्थ स्वामी रामदास संतों को संपूर्ण सुख-संतोष का, आनंद का मूल मानते हैं। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत गोंदवले महाराज जी के शब्दों में, 'संत सूर्य की तरह संसार पर उपकार करने वाले होते हैं। वे हजारों-लाखों लोगों की परमेश्वर का नाम-स्मरण करने के लिए प्रेरित करने वाले होते हैं।' अविद्या/अज्ञान के भँवर से जीवों को बाहर निकालने का काम संत ही करते हैं। समाज में जागृति लाने वाले संत महान होते हैं। संतों को उपदेश से सामान्य जनों को आंतरिक दुखों से छुटकारा मिलने की औषधि मिल जाती है। संत विषयों के प्रति आसक्ति कम करने वाले होते हैं और ईश्वर के प्रति प्रीति बढ़ाने वाले होते हैं। सामी साहब भी विविध उदाहरणों एवं महाजनों के उल्लेखद्वारा संतों की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। कबीर के शब्दों में,

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधि में पुनि आध।
कबीर संगत साधु की, कटै कोटि अपराध।।

गुरमुखु कीन छिपे, सूरज जां संसार में,
जंहिंजा छॾिया सत्गुरूअ, ॿंधन सभि कपे,
लुअं लुअं जापु जपे, अखंड आतम राम जो.

अपने गुरु के वचनों के अनुसार आचरण करने वाले गुरुमुख/शिष्य की प्रशंसा करते हुए सामी साहब कहते हैं, ऐसा सत् शिष्य (गुरुमुख) स्वयं को चाहे कितना भी छिपाने का प्रयत्न करे, पर वह कहीं भी छिप नहीं सकेगा। वह सूरज के समान सबको दिखाई देगा। ऐसे सत् शिष्य के सारे सांसारिक बंधन सतगुरु ने काट डाले होते हैं। फलस्वरूप वह गुरुमुख/शिष्य अखंड रीति से आत्माराम परमात्मा का नाम जपता रहता है। उसका रोम-रोम राम का जाप करता रहता है।

गुरु से दीक्षा लेने वाला मनुष्य 'गुरुमुख' होता है, सतगुरु की शरण में जाने वाला 'गुरुमुख' है। जिसके अपने गुरु के वचनों में विश्वास है, जिसे गुरु की कृपा प्राप्त हुई है, जो गुरु का आज्ञाकारी शिष्य है, जिसने अपना सर्वस्व सतगुरु के चरणों में अर्पित किया है, ऐसा मनुष्य 'गुरुमुख' है। बिरला मनुष्य ही सद्गुरु की कृपा प्राप्त करता है। सतगुरु शक्ति रूप होते हैं। वे आत्मज्ञान प्रदान कर शिष्य को परमात्मा के दर्शन करा सकते हैं। सतगुरु अपने सत शिष्य के सारे सांसारिक बंधन काट डालते हैं। इस प्रकार वे मानो शिष्य पर उपकार करते हैं। कबीर के शब्दों में,

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावनहार।।

मन की आखें खुलने पर शिष्य के बंधन भी कट जाते हैं और शिष्य प्रभु का नाम-स्मरण करते हुए आत्माराम से एकाकार होने का भी प्रयास करने लगता है। गुरुमुख को आत्मज्ञान करने वाले सतगुरु के संबंध में संत तुलसीदास कहते हैं,

तुलसी सतगुरु के अहहि, आनंदमय उपदेस।
संसय रोग नसाय सब, पावै न पुनि कलेस।।

जिस शिष्य/गुरुमुख/साधक के सारे संशय रूप रोग सतगुरु के उपदेश सुनने एवं उस के अनुसार आचरण करने से नष्ट हो गये होते हैं, उसको पुन: सांसारिक दुख भोगने नहीं पड़ते। भला जिसका रोम-रोम प्रभु का नाम स्मरण करता हो, उसको क्या कष्ट होगा? वह तो सदा ही सूर्य के समान चमकता रहता है!

■

घर में रामु रहे, मूरखु ग॒ोल्हे दह दिसा,
जप तप साधन जोग॒ में सामी देहि दहे,
नाहकु दुख सहे, थो पुठी ड॒ेई पाण खे.

महाकवि सामी कहते हैं कि राम (परमेश्वर) तो मनुष्य के घर (हृदय) में रहते हैं किन्तु मूर्ख (अज्ञानी) मनुष्य राम को बाहर दसों दिशाओं में ढूँढता रहता है। अज्ञानी मनुष्य जप, तप, योग आदि साधनाओं द्वारा परमात्मा को पाने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार वह अपने शरीर को जलाता रहता है। वह अपने आप से मुख मोड़ कर व्यर्थ ही अनेक दुख सहता रहता है।

संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं- ज्ञानी और अज्ञानी । ज्ञानीजन बुद्धिमान, समझदार, विवेकवान होते हैं। इसके विपरीत जड़, नासमझ, मूर्ख मनुष्य अज्ञानी होते हैं। अध्यात्म या परमार्थ के क्षेत्र में मूर्ख उन मनुष्यों को कहा जाता है जो अज्ञानी होते हैं अर्थात् जिन्हें आत्मबोध नहीं हुआ है। दूसरे शब्दों में, मूर्ख अपने आत्म स्वरूप को नहीं पहचानता है। घर-गृहस्थी अथवा 'देह' को ही सत्य मानकर जीवन जीता रहता है। 'मैं', 'मेरा', 'मैं देह हूँ' मानने वाला मूर्ख होता है। अविद्या या अज्ञान के कारण 'ऐसे मूर्ख मनुष्य असत्य को सत्य समझकर दुख भोगते रहते हैं। वस्तुत: उस परम सत्य को पाने के लिए, परमेश्वर की प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान होना आवश्यक है। परंतु मूर्ख जीव आत्मज्ञान के अभाव में परमेश्वर को अपने भीतर न देखते हुए बाहर देखने या ढूँढने का प्रयत्न करते रहते हैं। वे जप, तप/तपस्या, योग आदि साधनाओं के माध्यम से परमेश्वर को पाने का प्रयत्न करते हैं। कबीर के शब्दो में,

मोको कहाँ ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं मंदिर ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में ।।

सामी साहब भी यही बात कहते हैं। परमात्मा हमारे घर (देह शरीर) में ही निवास करता है। वह हमारे भीतर, मन में ही है। बाहर दसों दिशाओं में जा कर परमेश्वर की तलाश करना व्यर्थ है। अत: विवेक द्वारा उसे अपने अंदर ही देखने का प्रयत्न करो। परमेश्वर हर जीव, हर चेतन-अचेतन में व्याप्त है। वह आपके पास ही है। अत: दूर जा कर ढूँढने की जरूरत नहीं है।

कस्तूरी तन में बसै, मृग ढूँढे बन मांहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं ।।

■

घुरें कोहु घणी, मूरख माया राम खों,
विया पिटींदा केतिरा, मुंहं ते हथ हणी,
तूं भी नींदें कान का, कोड्डी साणु खणी,
सारि संभारि धणी, त सुखी थिएं सामी चए.

सामी जी कहते हैं, हे मूर्ख मनुष्य! तुम राम (परमेश्वर) से बहुत माया (धन दौलत) क्यों माँगते हो? अरे, न जाने कितने लोग सिर धुन कर, पछताते हुए (खाली हाथ) चले गये। तुम भी अंत में अपने साथ कौड़ी भी नहीं ले जाओगे। इसलिए तुम जल्द ही जागृत होकर प्रभु का स्मरण करो। तभी तुम यथार्थ में सुखी हो सकोगे। परमेश्वर का स्मरण करने से ही तुम्हें सच्चा सुख मिल सकेगा।

मनुष्य-देह बड़े भाग्य से मिलती है। मनुष्य के रूप में आ कर जीवन को सार्थक बनाना हमारा कर्त्तव्य होता है। परंतु साधारण जीव मोक्ष-मुक्ति की कामना करने की अपेक्षा माया के जाल में फँस जाता है। मनुष्य का मन धन के लोभ में लिप्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में वह विषयों के चक्कर में फँस कर स्वयं को विस्मृत कर दिन-रात बस यही सोचता रहता है कि किस प्रकार धन का संग्रह हो। लोभ की प्यास कभी बुझने वाली नहीं होती। अधिक लालच मनुष्य की समझ को नष्ट कर देती है। मनुष्य की आँखों पर पर्दा पड़ जाता है। कबीर के शब्दो में,

कबीर औंधी खोपड़ी, कबहूँ धापै नाहिं।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माहिं॥

धन का लोभी मनुष्य मानो धन कमाने के लिए ही जीता है। वह प्रभु-स्मरण आत्मज्ञान अथवा आध्यात्मिक साधना से दूर ही रहता है। वह यह नहीं सोचता कि अंतिम समय में यह माया, धन-दौलत आदि काम में नहीं आने वाला है। यह सब क्षण-भंगुर है। अंत में केवल प्रभु का नाम स्मरण ही काम में आने वाला है नहीं। मृत्यु के समय धन साथ में चलने वाला नहीं है अपितु 'राम' साथ में चलने वाला है। क्योंकि वही शाश्वत है। वही मोक्ष-मुक्ति दिलाने वाला है। वही जीवन सफल बनाने वाला है। अत: उसी राम का , परमेश्वर का स्मरण करना चाहिए। सच्चा सुख और संतोष वही देने वाला है। कबीर कहते हैं-

सांई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

■

चङा से चइजनि, चङो जनीं जे चित में,
बुराईअ कंहिंजीअ ॾे, सामी कीन ॾिसनि,
दया-दिरिष्टी रखी करे, सभ ते किरपा कनि,
सदा सम रहनि, इस्थित आतम-पद ते.

अच्छा इन्सान, उत्तम पुरुष, भलामानुस कौन है ? सामीजी ऐसे मनुष्यों के लक्षण बताते हुए कहते हैं, जिन के मन में अच्छाई है, भलमनसाहत है, सज्जनता और भद्रता है, ऐसे मनुष्यों को 'भलमानुस' की, 'चंगे' की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसे अच्छे लोग दूसरे किसी की बुराई की ओर, किसी के दोष या अवगुणों की ओर नहीं देखते। वे अपनी दया-दृष्टि सब पर डालते हैं और सब पर कृपा करते हैं। समानता का भाव लिए ऐसे सत्पुरुष अपने अंदर, आत्म-पद में लीन रहते है, मग्न रहते हैं। अपने आत्माराम से एकरूप बने रहते हैं।

समाज में अनेक प्रकार के मनुष्य होते हैं। अच्छे-बुरे, ज्ञानी-अज्ञानी, पुण्यवान पापी, बड़े-छोटे, विनम्र-अहंकारी आदि। अच्छे लोग अनेक सद्गुणों से संपन्न होते हैं। उन में उदारता, परोपकारिता, दयालुता जैसे गुण भी होते हैं। उदारता और परोपकार तो महानुभावता के लक्षण है। एक उदार एवं परोपकारी मनुष्य स्वार्थ-रहित होता है। उनके मन में दया की भावना होती है। वे अपने मन में किसी के प्रति ईर्ष्या या वैर का भाव नहीं रखते । सज्जन एवं उदार व्यक्ति का मन और हृदय हमेशा देवत्व से जुड़ा रहता है। परोपकार ही उनके जीवन का फल होता है। संत कबीर के शब्दो में,

हाड़ बड़ा हरि भजन करि, द्रव्य बड़ा कछु देह।
अकल बड़ी उपकार करि, जीवन का फल येह।।

भले मनुष्य किसी की बुराई नहीं करते न तो किसी के अवगुणों/दोषों की ओर इंगित करते हैं। पर-निंदा से दूर रहकर वे दूसरों की भलाई की ही बात सोचते हैं। ऐसे दयालु जीव पाप-कर्म से भी दूर रहते हैं। सम-दृष्टि धारण करने वाले ये लोग निष्कपट/निश्छल होते हैं। वे तो अपने अंतर्जगत में अपनी अंतरात्मा से एकरूपता बनाये रखते हैं। प्रियतम परमात्मा से प्रीति करने की बेला का यह दृश्य देखिए-

नयनों की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय।। (कबीर)

■

चंचल, चोर, चुगिल, सचु सुञाणनि कीनकी,
खोहिन खाम खियाल सां, मानुखु जनमु अमुलु,
सचारनि सोधे लधो, अनभइ घरु असुलु,
कटे कलिपत कुलु, सामी माणिनि सांत सुखु.

सामीजी कहते हैं कि इस संसार में रहने वाले चंचल स्वभाव के लोग, चोर और चुगलखोर इन्सान परम सत्य (परमेश्वर) को नहीं पहचानते। ऐसे मूर्ख एवं अज्ञानी जीव अनेक भ्रांत विचारों में अपना अनमोल मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही गँवाते हैं। किन्तु इसके विपरीत जो सच्चे मनुष्य हैं, उन्होंने अपनी अनुभूति द्वारा अपना असली, मूल स्थान (परमेश्वर) खोज निकाला है अर्थात् उन्हें अपने अंदर परमात्मा की प्रतीति हुई है। अत: अब वे अपने मन से भ्रांति/भ्रम आदि निकाल कर सच्ची शांति, संतोष एवं सुख का अनुभव कर रहे हैं।

मनुष्य-देह मिलना भाग्य की बात है। मनुष्य-जन्म अनमोल माना गया है। यह बार-बार नहीं मिलता। इसलिए हीरे जैसी मूल्यवान जीवन को सार्थक करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। संत-महात्मा कहते हैं कि चौरासी में पड़ कर मनुष्य अनेक प्रकार के दुख भोगता रहता है। अत: चौरासी के फेरे से बचने के लिए मनुष्य - शरीर मानो मुख्य द्वार है। इस दुर्लभ देह के मिलने पर मनुष्य को चाहिए कि वह मोक्ष प्राप्त करने हेतु नाम-स्मरण करे, भक्ति करे, गुरु से ज्ञान प्राप्त कर परमेश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करे। इसी से उसे सच्चा सुख-संतोष मिलेगा।

संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं- ज्ञानी और अज्ञानी । जिनके आत्मबोध हुआ है, वे ज्ञानी हैं। जिनके आत्मबोध नहीं हुआ है, वे अज्ञानी हैं। दुनिया में दिखाई देने वाले चंचल, चोर एवं चुगलखोर इन्सान अज्ञानी होते हैं। उन्हें सत्य, आत्मा, परमात्मा, परब्रह्म की पहचान नहीं होती। ऐसे मनुष्य अनेक प्रकार के भ्रम एवं भ्रांतियों में पड़कर अपना जीवन व्यर्थ ही गँवाते रहते हैं। वे झूठ की, असत्य की कमाई करते रहते हैं, सत्य की नहीं। वे परम सत्य से कोसों दूर रहते हैं। उन्हें अपने अनमोल जन्म की प्रतीति नहीं होती। परमात्मा को पाने की अभिलाषा, परम सुख प्राप्त करने की इच्छा अथवा मोक्ष-प्राप्ति की कामना तो सच्चे मनुष्यों में होती है। वे ही परम संतोष के अधिकरी होते हैं। परमात्मा के ध्यान और भजन को सोना/स्वर्ण मानते हुए संत कबीर कहते हैं-

कंचन केवल हरि भजन, दूजा काँच कबीर।
झूठा आल जंजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर॥

■

छह अठारहं चारि, ॻाल्हि चवनि था हिकिड़ी,
भॻति करे भॻवान जी, नाना भरम निवारि,
मिली माया मोह सां, हीरो जनमु न हारि,
साझुरि पाणु संभारि, मतां पवें पोइ ॾुखनि में.

अपने काव्य द्वारा वेदांत की व्याख्या करने वाले महाकवि सामी इस श्लोक में वेद-पुराण ग्रंथों का संदर्भ देते हुए कहते हैं कि चार वेद, छह दर्शनशास्त्र और अठारह पुराण भी यही एक बात कहते हैं कि हे मनुष्य! तुम परमेश्वर की भक्ति करके अपने नाना प्रकार के भ्रम-भ्रांतियों का निवारण करो। माया और मोह में फँस कर तुम अपना हीरे जैसा अनमोल जीवन व्यर्थ मत गँवाओ। इस बात को समझ कर तुम जल्द ही अपने आप को सँभालो, जाग्रत हो जाओ, नहीं तो तुम दुखों की खाई में जा पड़ोगे।

दर्शन शास्त्र/तत्त्वज्ञान में ब्रह्म जीव और जगत का वर्णन मिलता है। दर्शनशास्त्र छह हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत। उपनिषद् आदि वेद के ही अंतिम भाग हैं, जिन में जगत्, आत्मा एवं ब्रह्म की व्याख्या है। हिन्दुओं के धर्म विषयक 18 ग्रंथ हैं, जिन को 'पुराण' कहा जाता है। ब्रह्मपुराण, गरुड़पुराण, शिवपुराण, नारदपुराण, स्कंदपुराण, अग्निपुराण आदि पुराणों के चार लाख श्लोकों में सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्रलय का वर्णन मिलता है। अध्यात्म, धर्म, ब्रह्म आदि विषयों का वर्णन करने वाले हैं वेद। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

महाकवि सामीजी ने अपने अनेक श्लोकों में उपर्युक्त सभी ग्रंथों का सार बताने का प्रयत्न किया है। यहाँ इस श्लोक में भी यही बात बताते हैं कि हे जीव! (मनुष्य) ईश्वर/परमेश्वर की भक्ति द्वारा ही अपने भ्रम दूर कर सकोगे और अपने अनमोल जन्म को सार्थक कर सकोगे। इसलिए अपने अंदर ज्ञान का प्रकाश निर्माण करने का प्रयत्न करो, अपनी अंतरात्मा को पहचानो। इसी से तुम अनेक दुखों से मुक्ति पा सकोगे और अंत में अपना जीवन सफल कर सकोगे। सभी संतों ने भी परमेश्वर के स्मरण और एकाग्र-चित्त से भक्ति करने की सलाह दी है। अंतर्यामी परमात्मा के सुमिरन के संबंध में संत कबीर कहते हैं-

सुमिरन सुरति लगाय के, मुख ते कछु न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल।।

■

जग॒ में वसनि ठग॒, भारी पंज भरम जा,
मोहे मारे माति खसे, सभ खे कनि डगमग,
के सुजाखा सूरिमा, रहनि ऐन अलग॒,
सामी थी सर बु॒ंग, माणिनि मौज मुकिति जी.

सामी साहब कहते हैं कि संसार में भरम/भ्रम रूपी पाँच ठग रहते हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। ये पाँच विकार मनुष्यों को मोह कर, उनकी मति (समझ) मार कर, उन्हें मतिहीन कर अस्थिर बना डालते हैं। परंतु संसार में कुछ विरले मनुष्य रहते हैं जो इनसे पूरी तरह अलग होते हैं। ऐसे लोग अंतर्ज्ञान प्राप्त कर, अंतरात्मा से एकरूपता स्थापित कर, सर्वज्ञ बन कर मोक्ष- मुक्ति का परम आनंद प्राप्त करते हैं।

मनुष्य के मन में समाया हुआ अज्ञान माया है। मनुष्य का मन माया से प्रभावित होकर ही सब कुछ सोचता और करता रहता है। माया के कारण ही संसार में सभी दु:ख और चिंताएँ हैं। अज्ञान और अविद्या माया के ही नाम हैं। काम, क्रोध, लोभ आदि पाँच विकार भी माया के पास रहने वाले ठग हैं, जो जीव/मनुष्य को भ्रम में, धोखे में डालने वाले होते हैं। किसी वस्तु के सत्य स्वरूप को न समझ पाना ही भ्रम है। संत-साहित्य में उल्लेखित अज्ञान, भ्रांति, विपरीत ज्ञान आदि शब्द 'भ्रम' के ही स्वरूप को स्पष्ट करने वाले हैं। मायारूप, असत्य संसार को सत्य समझना भी एक प्रकार का भ्रम ही है। अपनी देह को ही 'मैं' समझ कर (देहोऽ हं) अभिमान करना भ्रम का मूल है। 'सोऽहं' (मैं वही आत्मा हूँ) का बोध हो जाने पर ही जीव भ्रम से छुटकारा पा लेता है।

माया आभास है, भ्रम है। वस्तुत: वह है ही नहीं। वह तो मरीचिका है, छल है। अविद्या भी आभास निर्माण कराने वाली है। वह मायावी है, असत्य है। भ्रम भी इसी के शस्त्र/हथियार हैं। संत कबीर ने माया को 'ठगिनी' कहा है। सामी साहब भी पाँच भ्रमों के 'ठग' की संज्ञान दी है। काम क्रोधादि पाँचों विकार जीव की मति भ्रष्ट कर उसे दु:ख की खाई में ढकेल देते हैं। इन पाँचों ठगों के प्रभाव से वही बच सकता है, जो अंतर्ज्ञान द्वारा जाग्रत होकर अलिप्त रहकर अंत:करण में परमात्मा से तन्मयता स्थापित करता है वही शूरवीर मनुष्य सच्चा संतोष पाता है। संत कबीर के शब्दो में-

भ्रम का ताला लगा महल रे, प्रेम की कुँजी लगाव।
कपट-किवाड़िया खोल रे, यह विधि पिय को जगाव।।

■

जिएं कंवल खिली, कनि खुशबूइ खुशीअ सां,
तिएं साधू ड॒ियनि सभ खे, अन्भई अण मुल्ही,
वठनि विधि वेसाह सां, के आशिक असुली,
मेटे कलिप कुली, सामी अचनि संतोख में.

सामी साहब साधु-संतों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं, जिस प्रकार कमल के फूल खिलते हैं और प्रसन्न चित्त से अपनी सुगंध चारों और बिखेर देते हैं, उसी प्रकार साधुजन सभी सामान्यजनों को अनमोल ज्ञान-प्रकाश देकर तृप्त कर देते हैं। किन्तु जो सच्चे प्रेमी भक्त हैं, वे ही साधु-संतों में पूर्ण विश्वास रख कर वह ज्ञान विधिपूर्वक ग्रहण करते हैं। प्रभु से प्रेम करने वाले अपने अंदर से अविद्या, भ्रम आदि को निकाल कर अंतरात्मा के साक्षात्कार का अलौकिक सुख-संतोष पाते हैं।

जिस प्रकार परमात्मा की महिमा अपरंपार है, इसी प्रकार परमात्मा-स्वरूप सच्चे साधु-संतों की भी महिमा असीम है। सच्चे संत निष्कलंक, मोह-ममता रहित और निःस्वार्थी होते हैं, वे परोपकारी होते हैं, समाज का हित करने वाले होते हैं। वे सूर्य की तरह संसार में सब पर उपकार करते हैं। साधु-संतों की कथनी और करनी में अंतर नहीं होता। सम-दृष्टि धारण किये हुए संतों के हृदय में करुणा का भाव रहता है। संत तुकाराम ने साधु का यह लक्षण बताया है,

जे का रंजले गांजले। त्यांसी म्हणे जो आपुले।
तोचि साधु ओळखावा। देव तेथेचि जाणावा।।

संत तुकाराम महाराज ने सच ही कहा है कि जो मनुष्य संसार के दुखी मनुष्यों को अपना मानता है, उनके दुःख दूर करने का प्रयत्न करता है, उसे ही साधु/संत कहना चाहिए और उसी में परमात्मा का निवास मानना चाहिए। संत कबीर भी यही कहते हैं- 'कबीरा, सोई पीर है, जो जानै पर पीर।' दूसरों का दुःख जानने वाले, सारे संसार का कल्याण चाहने वाले सच्चे साधुजन सच्चाई की मूर्ति होते हैं। ऐसे साधु-संतों ने ही सत्य (परमेश्वर) को पहचाना है और उसे सगुण-स्वरूप प्रदान कर लाखों-करोड़ों मनुष्यों के अंतःकरण को ज्ञान के प्रकाश से भर दिया है। ऐसे कल्पवृक्ष समान साधुओं की महिमा सामी साहब ने भी गायी है। संत दादू के शब्दो में-

दादू जिन प्राणी करि जणिया, घर बन एक समान।
घर मांहै बन ज्यूं रहे, सोई साधु सुजान।।

■

जीअं सूरु सती, सांगो न रखनि सिर जो,
तीअं मिलिया महबूब सां, मरी महबती,
जंहिंखे ड्रिनी सतिगुरूअ, सची रहति रती,
पाए परम गती, सामी माणिनि सेज सुखु.

प्रभु से अनन्य प्रेम करने वाले प्रेमियों/भक्तों के संबंध में सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार शूर-वीर और सती (मृत पति के साथ जीते जी चिता में जल जाने वाली स्त्री) को अपने सिर की, प्राणों की परवाह नहीं होती अर्थात् वे मरण के लिए तैयार रहते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर से सच्चा प्रेम करने वाले प्रेमी-जन भी मरने के लिए तैयार रहते हैं। ऐसे प्रेमी मृत्यु के उपरांत प्रियतम परमेश्वर से जाकर मिलते है। ऐसे प्रेमीजनों को उनके सतगुरु ने सच्ची रहनी सिखायी है। उसी के अनुसार सद् जीवन जी कर वे परम गति को, मोक्ष-मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। अब वे परमेश्वर संग शय्या पर अलौकिक सुख का आनंद अनुभव कर रहे हैं।

प्रेम ईश्वर की देन है। प्रेम प्रकृति की शक्ति है। अपने प्रियतम से, परम पिता परमेश्वर से प्रेम करना अलौकिक प्रेम है। परमेश्वर के प्रति समर्पण का भाव ही प्रेम है। जीव का सगुण परमात्मा से निष्काम प्रेम-संबंध भक्ति है। आत्मा प्रेम का उत्पत्ति-स्थान है। परमात्मा से किया या प्रेम शुद्ध, पवित्र, निस्स्वार्थ एवं असीम होता है। परमात्मा से प्रेम करने वाले को अपने आपको भुलाना पड़ता है। उसे अपनी देह के अभिमान का त्याग कर 'अहं ब्रह्मास्मि।' की अनुभूति करनी पड़ती है। प्रभु से सच्ची प्रीति करना किसी ऐसे गैर नत्थू खैरे का काम नहीं है। सच्चा प्रेम तो कोई वीर पुरुष ही कर सकता है, जिसने अपनी जान हथेली पर रख दी है। कबीर के शब्दों में-

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाय ।।

संत कबीर ने तो प्रेम को तलवार की धार पर चलने जैसा माना है, जिस पर चलते समय थोड़ी-सी चूक जानलेवा बन सकती है। अत: प्राणों की परवाह न करते हुए चलना सच्चे वीरों का ही काम है-

साधु, सती और सूरमा, इनका मत अगाध।
आशा छाँडे देह की, तिन में अधिका साध ।।

सामीजी भी इसी मत के हैं। सच्चे प्रेमी, भक्त-जन अपने मन से अविद्या/अज्ञान निकाल कर, सद्गुरु से आत्मज्ञान प्राप्त कर, भक्ति द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति करते हैं और प्रियतम-मिलन का सच्चा, अलौकिक आनंद और सुख पाते हैं।

■

जीएं हरियो दरिखतु, छाया फल फुल सुखु ड॒िए,
तीएं सभि कारिज करे, भागवती भग॒तु,
रखे न रतीअ जेतिरो, माया मोह ममतु,
ऐन अभेद उपरतु, सामी रहे सुभाव में.

सच्चे हरि-भक्त के लक्षण का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं कि जिस प्रकार एक हरा भरा पेड़/वृक्ष सबको छाया, फल और फूल दे कर सुख प्रदान करता है, उसी प्रकार भगवान का भक्त अपने सभी कार्य परोपकार के लिए ही करता है। वह अपने मन में रत्तीभर, तनिक मात्र भी माया, ममता या मोह नहीं रखता। वह तो अपने स्वभाव में पूरी तरह शुद्ध, पवित्र, अभेद वैराग्य लिए हुए रहता है।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं कि भक्तों के चार प्रकारों में 'ज्ञानी भक्त' मेरी आत्मा है। जो मन से कभी भी भगवान से विभक्त नहीं होता, वह भक्त है। आत्मज्ञान प्राप्त होने से ज्ञानी भक्त भेद-अभेद के अंधकार को मिटाकर परमेश्वर से मिल कर एकरूप हो जाता है। ऐसा भक्त साक्षात्कारी संत जैसा होता है। अज्ञान, अविद्या, माया, मोह आदि को मन से निकाल देने के कारण उसका हृदय निर्मल बन जाता है। ऐसा परोपकारी भक्त कैसा-

सदा कृपालु दुख परिहरन, वैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखहीं, हिंसा रहित सु होय।।

वस्तुतः सच्चे भक्तजन अनासक्त, निरलोभी और परोपकारी होते हैं। वे निर्मल और दयालु होते हैं। उनका जीवन समाज का हित साधने में लगा रहता है। सामी साहब भी ऐसे भक्तों के, सत्पुरुषों के लक्षण बताते हुए उनकी तुलना परोपकारी वृक्ष से करते हैं, जो बिना किसी भेद-भाव के हर प्रकार से सब की भलाई करता रहता है। वृक्ष अंत तक परोपकार ही करते रहते हैं। उनकी लकड़ियाँ भी काम में आती हैं। सच्चे भक्त भी ऐसे ही होते हैं। उनका जन्म मानो परोपकार करने के लिए ही होता है। वे सूरज के समान सब पर उपकार ही करते रहते हैं।

सब को सुख पहुँचावहीं, सुहृद जनन कौ हेत।
दूरहिं सूरज उदित ज्यौं, कमलन को सुख देत।।

मनुष्य को सदा अंतर्यामी परमात्मा का सुमिरन और भजन करना चाहिए। उसे अपने अतिरिक्त धन द्वारा भूखे तथा दीन-जनों की हर प्रकार से सेवा करनी चाहिए। यही सच्चा मानव-धर्म है।

■

जीएं हिरिखी हीर, रांझे सां हिक-रसु थी,
तीएं मिली महबूब सां, लंघे लक लकीर
ॼाणी सभु सुपने जा, सामी चए सरीर,
ग्यानवान गुर, पीर, लख लखाइनि अन्भई.

जीवात्मा को परमात्मा से मिलने के लिए प्रेरित करने हेतु हीर-राँझा की प्रसिद्ध लोक-कथा का उदाहरण देकर सामीजी कहते हैं, हे मनुष्य ! हीर राँझा पर मोहित हो कर, उससे मिल कर एकरूप हो गयी थी, उसी प्रकार तुम भी अनेक कठिनाइयों को लाँघ कर अपने प्रियतम परमेश्वर से मिलने का जतन करो। हे मनुष्य, तुम अपने शरीर को सपने के समान असत्य और क्षणभंगुर जानो। यही बात ज्ञानवान गुरु भी समझाते हैं। सच्चे संत, पीर और फकीर मनुष्य के मन में आत्मज्ञान का प्रकाश फैलाने का कार्य करते हैं।

दुर्लभ मनुष्य-देह प्राप्त होना बड़े भाग्य का लक्षण है। इसे सफल बनाना मनुष्य का कर्त्तव्य है। मोक्ष-मुक्ति की प्राप्ति अंतिम उद्देश्य है। अपना उद्देश्य पूर्ण करने के लिए भक्ति या भगवान का स्मरण आवश्यक है। इसके लिए परमात्मा से अनन्य प्रेम जरूरी है। परंतु प्रेम का मार्ग बड़ा कठिन है। यह मार्ग कँटीला है, दुखदायी है। प्रेम या भक्ति का मार्ग कितना कठिन है, इस संबंध में कबीर कहते हैं-

भक्ति दुहेली राम की, नाहिं वयापर का काम।
सीस उतारे हाथ सों, ताहिं मिलै निज धाम।।

अर्थात् भक्ति के क्षेत्र में प्राण न्योछावर करने की भी तैयारी होनी चाहिए। संत मीराबाई का श्रीकृष्ण से प्रेम (भक्ति) इसी प्रकार का है। अनेक दु:खों को और लोक निंदा को सह कर भी, विष का प्याला पी कर भी उसने प्रेम का त्याग नहीं किया। सामीजी ने हीर राँझा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। हीर ने राँझा से सच्ची प्रीति की थी। उससे मिलने के लिए उसने अनेक कष्ट सहे थे। वह अपने मार्ग से विचलित नहीं हुई थी। वह अपने प्रियतम के साथ एकरूप हो गयी थी। मनुष्य को भी परमात्मा से ऐसा ही अनन्य प्रेम करना चाहिए। इस कठिन मार्ग में, तलवार की धार पर चलने जैसे मार्ग में प्राण न्यौछावर करने के लिए तैयार रहना चाहिए। साधु संत भी यही बात कहते हैं। कबीर के शब्दो में-

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पगतलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद।।

■

जेको दुखाए, संतनि सापुरिसनि खे,
सो कीतो पंहिंजो पाणहीं, जन्मनि मंझि पाए,
जिएं कीड़ो गंद में, नितु डुॿी खाए,
साधू छॾाए, त सामी छुटे दुख खां.

सामी साहब एक तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि किसी भी संत, महात्मा या सत्पुरुष को सताना, दुख देना बड़ा पाप है। जो मनुष्य किसी संत को सताएगा, दुःख देगा, उसे इसी जन्म में उसका फल/परिणाम भुगतना पड़ेगा। न केवल इस जन्म में अपितु अनेक जन्मों में वह दुःख भोगता रहेगा। उसे अपनी करनी का फल मिलेगा और एक कीड़े की तरह उसे गंदगी (विष्ठा) में सदा डूबते रहना पड़ेगा। उस पापी जीव को तभी मुक्ति मिलेगी, जब कोई साधु संत आ कर उस पर दया कर छुड़ाएगा।

सच्चे संत मानो चलते-फिरते भगवान होते हैं। संत अपने आदर्शमय जीवन और कृति द्वारा स्वार्थ व संघर्षमय जीवन सुधारने में सहायता करते हैं। आत्मज्ञानी संत जीवन का रहस्य जानते हैं। वे समाज का हित साधने का महत् कार्य करते रहते हैं। आनंद के भंडार माने जाने वाले संत मनुष्य को भवसागर तैरने का, मोक्ष-मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बताने वाले होते हैं। नाम-स्मरण का आसान मार्ग संत ही बताते हैं, जिससे सामान्य मनुष्य भी परमेश्वर की भक्ति कर अपना जीवन सार्थक कर सकता है। ऐसे सच्चे संतों का आश्रय ग्रहण करना सबके लिए श्रेयस्कर है।

किन्तु समाज में कुछ ऐसे अधम, पापी और पतित लोग भी होते हैं, जो अहंकार के कारण सच्चे संतों की सेवा करने की अपेक्षा संतों की निंदा करते रहते हैं, संतों को सताते रहते हैं और दुःख देते रहते हैं। सामी साहब के विचारानुसार ऐसे लोग महापापी होते हैं। वस्तुतः संतों को बिना किसी विशेष कारण के दुखाना उचित नहीं है। संतों को अगर कुछ देना नहीं है, तो उन्हें दुखाना भी नहीं चाहिए। ईश्वर-स्वरूप संतों को सताने का अर्थ है परमेश्वर को दुःख पहुँचाना।इसका फल/नतीजा ऐसे निर्दयी लोगों को इस जन्म में तो भुगतना ही पड़ेगा, अपितु जन्म-जन्मांतर में भी अनेक यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। उन्हें उन दुःखों और यातनाओं से कोई दयालु साधु ही मुक्ति दिला सकता है।

संत न छांडै संतता, कोटिक मिलै असंत।
मल भुजंग भेदिया, शीतलता न तंजत॥

जेको पियो किरी, सामी साध संगति में,
मिलियो तंहिं माइल खे, सुतहि सिधि सुपिरीं,
सामी सुख संसार जा, वियसि सभि विसिरी,
अचे कोन फिरी, जनम मरण जे दुख में.

सत्संगति की महिमा का वर्णन करते हुए सामीजी कहते हैं, 'जो साधारण जीव सच्चे साधु-संतों की शरण में जाता है, ऐसे श्रद्धावान एवं निष्ठावान को अपने आप ही प्रियतम परमेश्वर की प्राप्ति हो जाती है। ऐसी अमर एवं सत् वस्तु मिल जाने पर भला उसे संसार के नाशवान एवं क्षणभंगुर सुखों का स्मरण क्यों होगा? वह तो ईश्वर-मिलन का अलौकिक सुख और आनंद प्राप्त करता रहता है। उसके जन्म-मृत्यु के सभी दुख दूर हो जाते हैं तथा वह दुबारा जन्म-मरण के फेरे में नहीं पड़ता। (यह मुक्ति की अवस्था है।)

मनुष्य को जन्म-मरण के कुचक्र से मुक्त करने वाला होता है सच्चे साधु-संतों का संग। सत्संग। संतों की संगत/संगति। अपनी किसी कामना की पूर्ति करने के लिए साधारण मनुष्य संतों के पास जाता है। परंतु संत कामना-पूर्ति करने वाले नहीं होते। संतों में देवत्व होता है। उन्हें सत्य का ज्ञान हुआ होता है। वे सर्वज्ञ होते हैं। और सत्य को ही धारण किये होते हैं। वे संसार में रहते हुए भी अलिप्त रहते हैं, कमल के फूल की तरह। समाज को सत्य का मार्ग दिखाकर, उसकी ओर उन्मुख करना और परमेश्वर के भजन स्मरण में सामान्यजनों का मार्गदर्शन करना उनका काम होता है। यह उनका परोपकारी स्वभाव है, जो समाज के लिए हितकारक है।

साधु-संतों का सत्संग-मिलन परम सुख प्रदान करने वाला होता है। इस परम सुख के सामने जगत् के सभी भौतिक सुख बहुत छोटे या तुच्छ माने जा सकते हैं। संतों की संगत करने के महत्व को संत कबीर इस प्रकार अंकित करते हैं,

संगत कीजै साधु की, कभी न निष्फल होय।
लोहा पारस परस ते, सो भी कंचन होय।।

सामान्य व्यक्ति को भी महान कर देने की शक्ति सत्संग में होती है। सत्संग और संत-सेवा में ही मनुष्य का कल्याण है। यह मोक्ष-मुक्ति पाने का प्रवेश द्वार है। संत कबीर के ही शब्दों में-

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि-कोटि करूं धाम।
जब लग साधु न सेवई, तब लग कच्चा काम।।

■

जोगी सन्यासी, बैरागी बांभण घणा,
नाना बेख जगत में, सेविड़ा उदासी,
तनी में को हिकिड़ो, दरिसन जो पियासी,
जंहिंजो फंदु फासी, सामी कटियो सतिगुरूअ.

सामी साहब कहते हैं कि संसार में आजकल संन्यासी वैरागी, ब्राह्मण आदि बहुत हो गये हैं। अनेक 'सेवड़ा' (जैन मत के साधु) एवं उदासीन व्यक्ति भी विविध प्रकार के वेश धारण कर विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। ये सभी अपने अपने ढंग से उपासना करते रहते हैं। किन्तु इन सब में कोई विरला पुरुष ही होगा, जिसके हृदय में परमेश्वर के दर्शन करने की सच्ची प्यास है। अपवाद रूप में ही कोई ऐसा होगा, जो सतगुरु की शरण में गया है और सतगुरु ने उसके जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति दिलायी होगी।

परमेश्वर की भक्ति द्वारा उसे प्राप्त करने के लिए तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के साधन एवं मार्ग अपनाये जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाएँ की जाती हैं। कर्ममार्ग, ज्ञान मार्ग एवं भक्ति मार्ग द्वारा परमेश्वर को पाने की इच्छा करने वालों की कोई कमी नहीं है। अपना घर-बार त्याग कर, संन्यासी, योगी आदि बन कर, कठोर साधनाओं द्वारा शरीर को क्लेश देने वाले भी बहुत मिल जाते हैं। नाना वेशों में भटकने वाले भी दिखाई देते हैं। सामी साहब उनके बाह्य आडंबर आदि पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहते हैं कि ऐसे पुरुषों में परम पिता परमेश्वर के दर्शन करने की सच्ची प्यास या लगन नहीं होती। बाह्याडंबर में लिप्त ऐसे लोग प्रभु को पाने के अधिकारी भी नहीं बन सकते। प्रभु तो सच्चे प्रेम से प्राप्त हो सकता है। इन सब में कोई विरला पुरुष ही होता है, जिसके हृदय में प्रभु को पाने की सच्ची कामना और प्रीति होती है। ऐसे विवेकवान प्रेमीजनों पर सतगुरु भी कृपा करते हैं और उनका आध्यात्मिक मार्ग आसान कर देते हैं।

बाह्य-आडंबर वाले खोटे साधु-संतों की निंदा कबीर जैसे संतों ने भी की है-

तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोय।
सहजै सब सिधि पाइयै, जो मन जोगी होय॥

माला तिलक लगाइके, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुँडाइके, चले दूनी के साथ॥

■

जंहिंखे परम पारिसु, लग॒ो संग साधूअ जो,
सो केवल कंचन थियो, छड॒े ममता मिसु,
सदा रहे सामी चए, खुलासो खालिसु,
ज॒ाणे सारी विसु, चमत्कारु चेतन जो.

सामी जी कहते हैं कि जिस मनुष्य को संतों की संगत रूपी परम पारस मणि का स्पर्श होता है, वह ममता, मोह आदि को त्याग कर खरा सोना (स्वर्ण) बन जाता है। वह सदा बंधन-रहित बन कर सारे विश्व को चेतन (परमेश्वर) का चमत्कार समझने लगता है।

संतजनों की संगत लाभदायक एवं कल्याणकारी मानी गयी है। क्योंकि सत्संग द्वारा मनुष्य सुसंस्कृत हो सकता है। साधु-संतों के संग में रहने से हमारे मन पर सात्विक विचारों का प्रभाव पड़ता है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए भी संतों की संगत जरूरी है। जीवन सुधारने के लिए सत्संग एक सरल साधन है। क्योंकि संत कल्पवृक्ष अथवा कामधेनु की भाँति हमारी मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाले होते हैं। संतों का सहवास यानी प्रभु का सहवास, सच्चिदानंद का सान्निध्य । संत साक्षात् करुणासागर परमात्मा की तरह होते हैं। संतों का संग प्राप्त होना, भाग्य का लक्षण है। संतों के सहवास से मनुष्य का अज्ञान दूर हो जाता है और अंतर्ज्ञान की प्राप्ति होती है। जैसे चंदन के संग में आ कर नीम का पेड़ भी अपना कड़ुवापन त्याग कर मीठा बन जाता है, उसी प्रकार सत्संग द्वारा बुरा मनुष्य भी अच्छा बन जाता है। संत कबीर के शब्दों में-

संगत कीजे साधु की, कभी न निष्फल होय।
लोहा पारस परस ते, सो भी कंचन होय।।

सामी साहब का भी यही कहना है कि साधु-संतों की संगत कभी व्यर्थ नहीं जाती। संतों के सहवास/सानिध्य में आने पर दुर्जन भी सज्जन बन जाता है, दुराचारी भी सदाचारी बन जाता है, पापी भी पुण्यवान बन जाता है। संत मानो पारस हैं, जिनके स्पर्श से मनुष्य सुधर जाता है। संत मानो उन हीन-दीन एवं दुष्टों पर भी दया कर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। संत उन्हें अपने जैसा सत्शील, निर्मोही, क्षमावान, परोपकारी और सदाचारी जीव बना डालते हैं। सच ही है कि संतों का संग पारस जैसा होता है।

होय शुद्ध, मिटी कलुषता, सत संगति को पाय।
जैसे पारस को परसि, लोह कनक ह्वै जाय।।

■

जंहिं समुझो सूतु, आतम देव अनूप जो,
सो बिना भेख भभूत जे, सामी थियो अवधूतु,
उथी अविद्या भूतु, भग॒ो तंहिंजे घर मों.

सामी साहब ज़ानी पुरुष का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जिस मनुष्य ने अनुपम आत्मतत्व (अंतरात्मा, परमात्मा) का सूत्र (तत्व, सार, रहस्य) समझ लिया है, वह भगवे वस्त्र धारण किये बिना, भभूत लगाये बिना ही अवधूत (सिद्ध मार्ग का योगी) बन जाता है। (अपने हृदय में परमात्मा को पहचानने वाले) उस मनुष्य के हृदय रूपी घर से अविद्या रूप भूत भाग जाता है।

आदिनाथ (शंकर भगवान) से निर्मित मार्ग को 'सिद्धमार्ग' कहा जाता है। इस मार्ग के योगी पुरुष को 'अवधूत' कहते हैं। वर्णाश्रम के कर्त्तव्यों को छोड़कर केवल आत्मा को ही देखने वाले 'अवधूत' कहे जाते हैं। अवधूतों या योगियों की साधना के नियम बड़े ही कड़े होते हैं। अर्थात् यह साधना कठोर होती है। तंत्रयोग द्वारा कुंडलिनी को जाग्रत कर शिव-शक्ति की समरसता/एकरूपता साधने का प्रयत्न किया जाता है। इस कारण इन्हें 'सिद्ध' कहते हैं।

यह तो हुई सिद्धों, अवधूतों की बात। किन्तु वेदांत के व्याख्याता सामी साहब कहते हैं कि परमेश्वर को पाने के लिए, आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मोक्ष-मुक्ति के लिए अथवा अविद्या के बंधनों से स्वयं को मुक्त करने के लिए सिद्ध-मार्ग को अपना कर अवधूत बन कर कठोर साधना करने की आवश्यकता नहीं है। अर्थात् सिद्ध-मार्ग के कठोर नियमों का पालन किये बिना भी अवधूत बना जा सकता है। योगशास्त्र के नियमों का पालन किये बिना भी योगी बना जा सकता है। आवश्यकता है एक सूत्र या तत्त्व को समझने की। वह तत्त्व यह है कि परमात्मा हमारे भीतर है, परमात्मा का निवास कण-कण में है। परमेश्वर को ढूँढने के लिए कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है। वह आत्म-देव, अंतरात्मा, परमात्मा हमारे हृदय में ही है । यह सूत्र या तत्त्व जिस मनुष्य ने समझ लिया है, उस मनुष्य के मन रूपी घर से अविद्या/अज्ञान रूपी भूत भाग जाता है। फलत: उसका मन विकाररहित बन जाता है, निर्मल, शुद्ध एवं पवित्र बन जाता है। इस कारण वह परमेश्वर के दर्शन करने का और परम सुख-शांति का अनुभव करने का अधिकारी बन जाता है।

तन को जोगी सब करे, मन को करे न कोय।
सब सिद्धि सहजै पाइके, सो मन जोगी होय।।

■

ठाकुरु विकाणो, सामी हथि संतनि जे,
पासे रखियाईं प्रीति सां, मंदाई माणो,
सेवा करे सेवकु थी, परिची सभु पाणो,
लटिकी लुभाणो, भंवर जां भगुति ते.

स्वयं भगवान भी सच्चे संतों से अत्यधिक प्रेम करते हैं, इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए सामी साहब कहते हैं, साक्षात् परमेश्वर अपने प्रिय संतों (भक्तों) के हाथों बिक गये हैं। परमेश्वर स्वयं ही प्रेम-भाव से अपने मन से बड़ाई (मान) निकाल कर संतों की सेवा करने लगे हैं। प्रभु स्वयं ही संतों की भक्ति पर मोहित होकर भँवरे/भ्रमर के समान फँस गये हैं।

ईश्वर के अस्तित्व में श्रद्धा, ईश्वर के मन में अपने भक्तों के लिए प्रेम, मनोकामना पूरी करने के संबंध में भक्तों का विश्वास एवं मोक्ष-मुक्ति- इन चार तत्त्वों पर भक्ति की आधारशिला टिकी रहती है। श्रीमद् भागवत और गीता में भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। परमेश्वर के 'निर्गुण' एवं 'सगुण' रूपों में से अपनी भक्ति-भावना प्रकट करने के लिए भक्तों को परमेश्वर का 'सगुण' रूप ही अधिक भाता है। गीता में भक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। भक्ति-मार्ग में सब को भक्ति करने का अधिकार रहता है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ प्रकार बताये गये हैं, उन में 'दास्य' 'सख्य' और 'आत्मनिवेदन' मुख्य हैं। कीर्तन आदि मार्गों द्वारा भक्त अपने आराध्य देव के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करता है। परमेश्वर का 'दास' बन कर उन्हें अपना मित्र या सखा मान लेता है। अंत में आत्म-समर्पण कर ईश्वर के साथ एकता स्थापित कर लेता है। यही 'परा भक्ति' है इस प्रकार भक्ति में प्रेम-तत्त्व अनिवार्य है। ज्ञानी भक्त की दृष्टि से भक्त और परमेश्वर में कोई द्वैत-भाव होता ही नहीं है। आत्मानुभूति के स्तर पर ईश्वर और भक्त अथवा सगुण और निर्गुण का भेद नहीं होता ।

सामी साहब इसी प्रेममय भक्ति का वर्णन करते हैं, जहाँ परमेश्वर स्वयं अपने भक्तों द्वारा बिक गया है। भक्तों की भक्ति पर मोहित होकर अपना बड़प्पन बिसार कर भक्तों का हो गया है। स्वयं भगवान के शब्दों में-

हम भक्तनि के भक्त हमारे ।।

अर्थात् मैं भक्तों का हूँ और भक्त हमारे हैं अथवा मैं अपने भक्तों का भक्त हूँ। प्रभु स्वयं भक्त बन जाते हैं, अपने भक्तों के ही भक्त बन जाते हैं। सामी साहब के शब्दों में जैसे सूर्यविकासी कमल पर शाम के समय मोह और प्रेमवश भ्रमर बैठे जाने पर कमल मुँद जाने से भ्रमर फँस जाता है, वैसे प्रभु भी भक्तों के मोहजाल में फँस जाते हैं।

■

ॾिसी जीउ ठरे, नारद निजु भॻतनि खे,
मां धरियां ध्यानु तंहिंजो, जो मुंहिंजो ध्यानु धरे,
ओति पिरोति ॼाणी करे, थियां कीन परे,
सामी कीन सरे, बिना भॻति आहार जे.

सच्चे भक्तों की भक्ति अथवा प्रेम से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु नारद मुनि से क्या कहते हैं, इसका उल्लेख करते हुए सामीजी ने भगवान विष्णु के ही कथन को शब्दांकित किया है। भगवान विष्णु कहते हैं, हे नारद! अपने प्रिय भक्तों को देखकर मेरा मन आनंद और संतोष से भर जाता है। मैं उन्हीं भक्तों का स्मरण करता हूँ, जे मेरा स्मरण करते हैं। भक्ति भाव से ओत-प्रोत ऐसे भक्तों से कभी भी दूर नहीं रहता। हे नारद! भक्ति रूपी आहार के सिवाय मैं रह नहीं सकता।

सगुण परमात्मा और जीवात्मा (मनुष्य) के निष्काम, निर्मल प्रेम-संबंध को 'भक्ति' कहा गया है। भगवान में पूर्ण आस्था रखकर आराधना करने वाला 'भक्त' कहा जाता है। भक्तों के चार प्रकार हैं- (1) **अथर्थी-** सत्ता, संपत्ति, संतान आदि प्राप्त करने हेतु भक्ति करने वाला। (2) **आर्त-** दुःखों के कारण व्याकुल होकर दुःखों से मुक्ति पाने की इच्छा से भक्ति करने वाला । (3) **जिज्ञासु-** भगवान के स्वरूप को जानने की इच्छा करने वाला(4) **ज्ञानी-** ब्रह्म और जीव की एकता का ज्ञान हो जाने के कारण उस अनुभूति का अनुभव करने की तीव्र इच्छा से भगवान की अनन्य भक्ति करने वाला भक्त। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि इन चारों भक्तों में 'ज्ञानी भक्त' मेरी आत्मा है।

उपर्युक्त श्लोक में भगवान विष्णु अपने प्रिय भक्त नारदजी को अपने मन की एक बात बताते हैं। देवर्षि नारद को भगवान का मन कहा गया है। नारद मुनि ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र थे। वे परमज्ञानी प्रेमी भक्त और दिव्य ऋषि थे। नारदजी की कृपा से ही संसार को श्रीमद्‌भागवत एवं वाल्मीकि रामयण जैसे अनुपम ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। ऐसे नारद मुनि से भगवान विष्णु संतोष-भाव से कहते हैं कि अपने सच्चे और प्रिय भक्तों को देखने से मुझे अत्यधिक आनंद और संतोष प्राप्त होता है। (भक्तों को भी परमेश्वर के दर्शन करने से अलोकिक आनंद का अनुभव होता है और यहाँ भगवान को भी भक्तों के दर्शन से आनंद का अनुभव होता है।) भक्ति ही मेरा भोजन है, जिसके बिना मैं रह नहीं सकता। परमेश्वर तो भक्तों के हृदय में ही निवास करते हैं।

नाहं वसामि वैकुंठे, योगिनां हृदये न च।
मद्‌भक्तायत्र गायन्ति, तत्रतिष्ठामि नारद ।।

■

तंहिंजा सभि पिरवाणु, ग्यान ध्यान जप जोग॒ जग॒,
जंहिं मिली साध-संगति सां, डि॒ठो पंहिंजो पाणु,
दुख सुख लाभ अलाभ में, रहे साबूती साणु,
ज॒ाणे सभु कल्याणु, सदाई सामी चए.

आत्मज्ञानी मनुष्य के लक्षण बताते हुए महाकवि सामी कहते हैं, ''जिस मनुष्य (साधक) ने साधु-संतों की संगत का लाभ प्राप्त किया है, उसका सारा ध्यान, ज्ञान, जाप, तपस्या, योग और यज्ञ आदि परमेश्वर ने स्वीकार कर लिए हैं। फलस्वरूप ऐसा मनुष्य (साधक) संसार में रहते हुए, सुख-दुख की हर अवस्था में, लाभ और हानि की हर स्थिति में स्थिर (दृढ़, अटल) रहता है। ऐसा मनुष्य अपने मन में दूसरों के प्रति सदा ही कल्याण/भलाई की भावना धारण किये हुए रहता है।''

अपने आत्मस्वरूप को पहचानने के लिए, आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए ज्ञान-मार्ग को अपना कर विवेक, वैराग्य, मोक्ष की आकांक्षा आदि साधनों का सहारा लेना चाहिए। भक्ति के विविध प्रकारों के द्वारा भी परमेश्वर के दर्शन हो सकते हैं। किन्तु सभी साधनाओं में परमेश्वर के प्रति अनन्य प्रेम होना नितांत आवश्यक है। सबको अपने अंत:करण में परमात्मा को देखना चाहिए। संत कबीर के शब्दों में-

साहब हम में, साहब तुम में, जैसे प्राना बीज में।
मत कर बंदा गुमान मन में, खोज देख ले तन में।।

अब भला अपने मन-मंदिर में बैठे हुए परमात्मा को कैसे देखें? कैसे दर्शन करें परमात्मा का ? उत्तर हैं 'स्वयं' को, अपने को पहचानना। अपने मन में स्थित उस परम तत्त्व का बोध करने के लिए सतगुरु या साधु-संतों की शरण में जाना। उनके वचनों के अनुसार आचरण करना। सतगुरु अंतर्ज्ञान प्रदान करने वाले हो हैं। मन के विकार दूर कर, अज्ञान का नाश कर ज्ञान का प्रकाश देने वाले सच्चे संतों के सानिध्य से यह लाभ प्राप्त होता है। कबीर साहब के शब्दों में,

कबीर संगत साधु की, नित प्रति कीजे जाय।
दुरमति दूर बहावसी, देई सुमति बताय।।

वस्तुत: सच्चे साधु-संतों की संगत प्राप्त होना भाग्य का लक्षण है। संत-समागम मानो सभी साधनाओं का सम्राट है। इसलिए अपना जीवन सफल बनाने के लिए सत्संग भी जरूरी है। सामी साहब भी यही कहते हैं। जप, तप, ध्यान आदि के साथ-साथ संतों की संगत या सहवास करना भी लाभदायक एवं कल्याणकारी है।

■

दरदवंद दिलिबरु, परतखि ड्डिठो पांहिंजो,
सामी संगि साधूअ जे, दिलि जो खोले दरु,
कंहिंखे सले कीनकी, अनभइ सुखु अजरु,
करे कीअं पधरु, नाजुकु धाग़ो नींहं जो.

दरदवंद (प्रभु के प्रेम में पीड़ित), सच्चे प्रेमी (साधक) ने, अपने प्रियतम को प्रत्यक्ष देख लिया, परमेश्वर का साक्षात् अनुभव किया। सामी साहब कहते हैं कि उस प्रेमी ने साधु (सतगुरु) के संग-सहवास में आने पर अपने मन का द्वार खोल कर भीतर अपने प्रियतम परमेश्वर के दर्शन कर लिए। दरदवंद को अंतर्ज्ञान से इतना आनंद प्राप्त हुआ वह दूसरे किसी को भी अपने आनंद के संबंध में बताने को तैयार नहीं है। भला प्रेम के ऐसे नाजुक धागे को संसार के सामने कैसे प्रकट करे?

परमेश्वर के प्रति अपने मन में असीम प्रेम धारण करने वाले प्रेमी भक्त परम आत्मा को मन के अंदर देखना चाहते हैं। ऐसे निष्ठावान भक्त प्रभु के दर्शन के लिए, उसे पाने के लिए ऐसे तड़पते रहते हैं, जैसे चातक पंछी स्वाति नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद के लिए अथवा पतिव्रता स्त्री अपने पति के विरह में तड़पती, रोती रहती है। भक्त भी परमात्मा के दर्शन का प्यासा होता है। मीराबाई भी प्रभु के प्रेम की दीवानी थी। उनके पदों में उनका यह दर्द झलकता है। गोपियों का विरह भी ऐसा ही था। सामीजी कहते हैं कि अपवाद रूप में कोई ऐसा प्रेमी भक्त होगा, जो सतगुरु की कृपा से अपने मन का द्वार खोलकर भीतर झाँकने का प्रयत्न करता है। गुरु-कृपा से ही वह प्रभु के दर्शन करता है।

यह आत्म-प्रतीति अथवा आत्मानुभव कैसा होता है? भला शाश्वत सत्य के विशुद्ध अनुभव का आनंद किस प्रकार वर्णित किया जा सकता है? क्योंकि ईश्वरीय प्रेम का अपनी आँखों से, जीते जी अनुभव प्राप्त करना, साक्षात्कार करना अवर्णनीय होता है। अलौकिक आनंद का वर्णन करते समय हमारे शब्द बहुत ही छोटे प्रतीत होने लगते हैं, भाषा पंगु बन जाती है। वह आनंद मात्र अनुभूति का विषय होता है, जो किसी को बताया नहीं जा सकता। ठीक उसी प्रकार जैसे गूँगा मनुष्य गुड़ का स्वाद ले तो सकता है, किन्तु दूसरो को बताने में असमर्थ होता है। प्रभु के दर्शन का आनंद वर्णनातीत होता है।

मन-भावन के मिलन कौं, सुख कौं नाहिन छोर।
बोलि उठै नचि-नचि उठै, मोर सुनत घनघोर।।

■

नकी थीउ विरक्तु, नकी गपु गिरस्त में,
मिली वठु महबूब सां, सामी चए सुततु,
मोटी ईंदुइ कीनकी, अहिड़ो हथि वक्तु,
पोइ रुअंदे रतु, अखिनि मों आजिज़ु थी.

मनुष्य को अनमोल देह प्राप्त हुई है। सामी साहब मनुष्य को समझाते हुए जीवन सफल करने के संबंध में कहते हैं कि हे मनुष्य! तुम न विरक्त/वैरागी बनो और न ही घर-गृहस्थी के जाल में फंसो; तुम तुरंत ही अपने प्रियतम परमेश्वर से मिलने का जतन करो। यही समय है। एक बार अवसर हाथ से निकल जाने पर दुबारा नहीं मिलने वाला है। फिर तुम्हें बहुत पछताना पड़ेगा और दीन हो कर अपनी आंखों से लहू के आँसू बहाने पड़ेंगे।

रामचरितमानस की एक चौपाई के अनुसार 'बड़े भाग मानुष तन पाया। सुर दुर्लभ सद्ग्रंथनि गावा।।' हमें ऐसा मनुष्य शरीर मिला है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मनुष्य जन्म में ही हम भक्ति द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर जन्म-मरण के कुचक्र से छुटकारा पाकर मोक्ष-मुक्ति के अधिकारी बन सकते हैं। मनुष्य-जन्म एक अवसर है मोक्ष-मुक्ति पाने का। परमेश्वर को पाने के लिए अनेक लोग घर बार को त्याग कर, वैरागी-संन्यासी बन कर जंगल, पहाड़ या तीर्थ स्थानों पर चले जाते हैं। प्रभु को पाने के लिए भटकते रहते हैं। योगी बन कर कठोर साधनाएँ करते रहते हैं। इसके विपरीत असंख्य लोग अपने गृहस्थाश्रम में फँस कर माया के गुलाम बन जाते हैं। इस प्रकार घर-गृहस्थी में फँसे रहना और बैरागी बन कर गृहस्थाश्रम का त्याग करना, यो एक दूसरे के विरुद्ध दो किनारे या प्रवृत्तियाँ हैं। एक है प्रवृत्ति और दूसरी है निवृत्ति।

किन्तु सामी साहब ने एक मध्यम मार्ग सुझाया है। इस मार्ग में कोई अतिरेक नहीं है। भक्ति करने अथवा परमेश्वर को पाने के लिए न वैराग्य धारण करने की जरूरत है और न ही घर-गृहस्थी या प्रपंच के कीचड़ में फँसकर परमार्थ से दूर रहने की आवश्यकता है। मध्यम मार्ग यह है कि मनुष्य को अपने मन से वैरागी बनना चाहिये। मन में वैराग्य धारण कर, घर-गृहस्थी के कर्तव्य निभाते हुए, विहित कर्म करते हुए भगवान की भक्ति करनी चाहिए। गुरु का सान्निध्य पा कर, नाम-स्मरण करते हुए, विवेक जाग्रत कर आचरण करना चाहिए। अन्यथा मनुष्य को अनेक दु:ख सहने पड़ेंगे। उसके पास पछताने के सिवाय और कुछ नहीं बचेगा!

■

नको आरु न पारु, सुपेरियां जे सिक जो,
सुंवातीअ बिन सिप खे, अचे कीन करारु,
मछीअ जे मन में वसे, पाणी पिर आधारु,
सामी सिजणहारु, पलक पराहूं न थिए.

सामी साहब एक प्रेमी भक्त की मनोदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रियतम परमेश्वर के प्रति मेरा (भक्त का) जो अथाह प्रेम है, उसका कोई अंत ही नहीं है। मैं उसका वर्णन करने में असमर्थ हूँ। मेरी दशा उस सीपी/सीप जैसी है, जिसको स्वाति नक्षत्र की वर्षा के बिना आराम/चैन/सुख नहीं मिलता। मछली के लिए भी पानी उसका प्राण-आधार होता है, जिसके बिना वह जी नहीं सकती है। इसी प्रकार सृजनहार परमेश्वर भी मेरे (भक्त के) प्राणों का आधार है, जो एक पल/क्षण के लिए भी मुझसे दूर न हो!

भक्ति का अर्थ प्रभु से नितांत प्रेम है। प्रेम ही भक्ति है या भक्ति ही प्रेम है। प्रियतम परमेश्वर को पाने के लिए प्रेम की ही आवश्यकता होती है। प्रेम तो भक्ति की आत्मा है। परमेश्वर स्वयं भी प्रेम ही है। परमेश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। प्रभु को पाने के लिए पहला और अंतिम सोपान (सीढ़ी) प्रेम ही है। गोपियों ने श्रीकृष्ण से निश्छल, निर्मल और प्रगाढ़ प्रेम किया। वे श्रीकृष्ण के बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकती थीं। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर तो उनकी दशा मरणासन्न हो गयी थीं। श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ही उनके लिए भक्ति और मुक्ति थी। ऐसा ही प्रेम मीराबाई का था।

प्रभु से प्रेम कैसा होना चाहिए? सामी साहब कहते हैं कि यह प्रेम अनन्य और असीम होना चाहिए। ऐसे प्रेम में प्रभु-मिलन की आस होनी चाहिए, तड़प और बैचेनी होनी चाहिए। सामी साहब के विचारानुसार यह प्रेम सीपी और मीन (मछली) की भाँति होना चाहिए। सीपी स्वाति नक्षत्र की वर्षा के लिए बेचैन रहती है और मछली पानी के बिना जी नहीं सकती। सच्चे प्रभु भक्त की भी बेचैनी इसी प्रकार होनी चाहिए। सारी सृष्टि का निर्माणकर्ता परमेश्वर भी अपने प्रिय भक्तों का प्राण-आधार होता है। बेचैन भक्त की पुकार सुनिए-

केहू भाँति कृपा सिंधु मेरी ओर हेरिये।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिये॥

(विनय-पत्रिका)

■

नारायण जे नाम जो, धरियो जिनि ध्यानु
कोरे कसे कढियो, तनि अंदर मों अभिमानु
सामी रहनि साफ सदा, पाए गुर गियानु,
तनी खे भॻिवानु, मालिमु मंझोई थियो.

महाकवि सामी जी कहते हैं जिन लोगों ने नारायण का, भगवान का नाम अपने हृदय में धारण कर लिया है, राम-नाम का स्मरण किया है, उन्होंने अपने हृदय से अहंकार कुरेद कर निकाल दिया है। ऐसे जीव सतगुरु से ज्ञान ग्रहण कर सदा ही निर्मल और पवित्र जीवन बिताने लगे हैं। फलस्वरूप वे अपने हृदय में ही परमेश्वर की अनुभूति करने लगे हैं। वे मन ही मन परमेश्वर के दर्शन करने लगे हैं।

मनुष्य जीवन में या आध्यात्मिक क्षेत्र में नाम की बड़ी महिमा है। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग आदि की अपेक्षा नाममार्ग सरल और सहज माना गया है। अनेक संतों ने साधारण/सामान्यजनों के लिए नाम-साधना को सुलभ बताया है। कलियुग में मनुष्य अनेक व्याधियों, चिंताओं एवं तनावों आदि से ग्रस्त रहता है। वह कहीं न कहीं शांति, समाधान, संतोष और आनंद की तलाश में रहता है। ऐसे मनुष्यों के लिए संतों ने नाम-स्मरण रूपी एक चिंतामणि अथवा कल्पवृक्ष प्रदान किया है। राम का नाम-स्मरण हृदय से करने से सामान्यजनों का जीवन सुधर जाता है। हृदय की गहराइयों से नाम-स्मरण करने से मन शुद्ध हो जाता है और आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। नाम ईश्वर के अस्तित्व का चिह्न है। नाम में ही राम समाया हुआ है। सच्चिदानंद स्वरूप होने के कारण प्रभु से अपना नाता जोड़ने के लिए नाम जैसा और कोई सरल साधन नहीं है।

सामी साहब कहते हैं कि नाम स्मरण से अंदर का अभिमान दूर हो जाता है । संत तुकाराम महाराज जी ने कहा है कि नाम जपने से दैहिक, भौतिक और दैविक नामक तीन प्रकार के ताप नष्ट हो जाते हैं। नारायण का नाम-स्मरण करने से भक्त प्रह्लाद का उद्धार हो गया। पापी अजामिल को भी मोक्ष मिल गया। राम के नाम से पत्थर भी तैर जाते हैं। संत ज्ञानेश्वर ने नाम की महिमा इस प्रकार वर्णित की है-

एक तत्व नाम दृढ़ धरी मना। हरीसी करुणा येईल तुसी।
नामपरते तत्त्व नाही रे अन्यथा। वाया आणिक पंथा जाशी क्षणी ।।
(हरिपाठ)

■

निरिगुणु ऐं सरिगुणु, ॿेई आकार अलख जा,
जंहिंखे पिरेम परितीति सां, मने तुंहिंजो मनु,
तंहिंजो करि तद्‌रूपु थी, बिना भेद भॼनु,
पिरीति उते परिसनु, सामी थींदुइ सुपिरीं.

सामी जी कहते हैं कि निर्गुण और सगुण ये दोनों आकार परब्रह्म/परमेश्वर के ही हैं। परमेश्वर के इन दोनों रूपों में से किसी भी रूप को तुम्हारा मन मान ले, जिस रूप का अनुभव प्रेम से करे, तुम उस रूप की भक्ति करो। अर्थात् तुम्हारी यह भक्ति द्वैत-भाव, निज-पर के भेद-भाव से रहित होनी चाहिए। तुम यह भक्ति एकरूप होकर, तद्‌रूप हो कर सकते हो। सच्चे प्रेम से प्रियतम परमेश्वर प्रसन्न होंगे।

परब्रह्म, परमात्मा अंतिम परम तत्त्व है। गीता में ब्रह्म की परिभाषा बताते हुए इसे 'अक्षर' ब्रह्म परमं' कहा गया है, जो कभी भी नष्ट न होने वाला तत्त्व है। इसी परम-तत्त्व को ज्ञानी जन 'ब्रह्म', योगी-जन 'परमात्मा' और भक्तजन 'भगवान' कहते हैं। परब्रह्म एक होते हुए भी उसके दो प्रमुख प्रकार है- निर्गुण और सगुण। दूसरे शब्दों में परमेश्वर के दो रूप हैं- अव्यक्त और व्यक्त, अमूर्त और मूर्त, दिखाई न देने वाला और दिखाई देने वाला। सगुण उपासना में परमात्मा के छह गुणों में से किसी एक विशेष गुण को मानकर उसकी उपासना, पूजा या स्तुति आदि की जाती है। निर्गुण-उपासना में विश्वात्मक परम-तत्त्व का ध्यान एवं चिंतन किया जाता है। निर्गुण-भक्ति में साधक के सामने कोई प्रतीक (मूर्ति आदि) न होने का कारण यह भक्ति सगुण-भक्ति की अपेक्षा कठिन होती है।

अविनाशी ब्रह्म के किसी भी रूप की भक्ति की जा सकती है। सामी साहब भी यही बात कह रहे हैं। मनुष्य को परमात्मा का जो रूप मन में अच्छा लगे, उसका जो नाम ठीक लगे, उसका जाप, भजन, स्मरण आदि कर सकता है। भक्ति के क्षेत्र में स्वतंत्रता है। परंतु किसी भी रूप की भक्ति करते समय साधक के मन में अपने आराध्य के प्रति अनन्य प्रेम-भाव, निष्ठा एवं एकाग्रता होनी चाहिए। परमेश्वर सच्चे प्रेम, सच्ची भक्ति या स्मरण से ही प्रसन्न होते हैं। सच्चे भक्त/प्रेमी एकाग्र चित्त से परमात्मा का नाम स्मरण करते हैं।

जो जन प्रेमी राम के, तिन की गति है येह।
देह से उद्यम करे, सुमिरन करे विदेह।।

■

पथर पूज॒ा कनि, देवु न डि॒सनि देहि में,
पंडितु ज॒ाणी पाण खे, करिमनि मंझि ब॒झनि,
साखां संतनि जूं बुधी, मरमु न रखनि मनि,
से कीअं रंगि रचनि, सामी सुपेरियुनि जे.

सामान्यजनों की वृत्ति पर हलका-सा व्यंग्य करते हुए सामी जी कहते हैं, ''संसार के लोग पत्थर को भगवान मान कर उसकी पूजा करते हैं। अर्थात् वे पत्थर पूजते हैं, परंतु अपने शरीर में स्थित भगवान को नहीं देखते। कुछ लोग स्वयं को विद्वान या पंडित मानकर कर्मों में बँध कर कर्मकांड करते रहते हैं। किन्तु ऐसे अनेक लोग संतों के साक्षात् वचन/उपदेश सुन कर भी अपने अंदर विवेक धारण नहीं करते। भला ऐसे अज्ञानी जीव परमेश्वर के प्रेम के रंग में कैसे रंग सकेंगे?

अज्ञान का अर्थ है ज्ञान का अभाव, अबोधता या नासमझी। यह अर्थ व्यावहारिक जगत से संबंधित है। अध्यात्म की दृष्टि से आत्मा को गुण और गुण-कार्य से अलग न जानने का अविवेक ही अज्ञान है। दूसरे शब्दों में आत्मज्ञान को ज्ञान कहा जाता है और आत्मज्ञान के अभाव को 'अज्ञान' कहा जाता है। संसार में ऐसे अज्ञानी लोग बहुत मिलेंगे, जो आत्मज्ञान से वंचित है। ऐसे अज्ञानी जीवों ने अपने ब्रह्म-स्वरूप (अहं ब्रह्मास्मि) को भुला दिया होता है। अपने ही हृदय में परमात्मा को देख सकने की क्षमता उनमें नहीं होती। प्रियतम परमात्मा भीतर होते हुए भी उसे बाहर ढूँढने का प्रयत्न किया जाता है। ये लोग पत्थर को ही भगवान मानकर उनकी पूजा करते हैं। मंदिर आदि स्थानों पर प्रभु को पूजने जाते रहते हैं।

ऐसे अज्ञानी जीवों का वर्णन करते हुए महाकवि सामीजी कहते हैं कि वे स्वयं को ज्ञानी पंडित मानकर नाना प्रकार के कर्मकांडों के बंधन में स्वयं को बाँध लेते हैं। वे प्रभु की प्रेममय भक्ति की अपेक्षा बाह्य कर्मकांड को ही अधिक महत्व देते हैं। बाह्याडंबर के प्रेमी ऐसे लोग साधु-संतों के उपदेश सुनकर भी उनका रहस्य या मर्म समझ नहीं पाते। ऐसे लोग प्रभु के प्रेम में कैसे रंग सकेंगे? परमेश्वर के दर्शन कैसे कर सकेंगे? ऐसे अज्ञानी जीवों के संबंध में संत कबीर कहते हैं,

माला, तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, चले दूनी के साथ।।

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों मालिक घट माँहिं।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढन जाहिं।।

■

परिची जंहिं पियासे, साधूअ जो संगु कयो,
सहजे थियो सामी चए, तंहिंजो पटु पासे,
अंदरि ब॒ाहरि नभ जां, साखी सम भासे,
फिरी न फासे, अविद्या जे अंहकार में.

परमात्मा के दर्शन करने की कामना करने वाले मनुष्य के संबंध में सामी जी कहते हैं, ''जिस प्यासे मनुष्य ने प्रसन्न भाव से साधु संत का संग किया, उसका अविद्या/माया का आवरण अपने आप ही हट गया। फलस्वरूप उसे चारों ओर, भीतर और बाहर परमात्मा के अस्तित्व का बोध होने लगा; ठीक उस तरह जैसे आकाश बाहर और अंदर समान रूप से विद्यमान/उपस्थित रहता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता का बोध जिस मनुष्य को हुआ है, वह पुनः अविद्या के अहंकार में नहीं फँसता।''

अविद्या का अर्थ है अज्ञान । अविद्या मिथ्या होती है। असत्य/अयथार्थ वस्तु का आभास निर्माण कराने वाली शक्ति अविद्या है। अविद्या की उपाधि के कारण जीवात्मा परमात्मा से अलग न होते हुए भी अलग भिन्न प्रतीत होता है। अविद्या आत्मा को जीव (मनुष्य) के रूप में बाँध देती है। वह माया की भाँति ही जीव को बंधनों में जकड़ने वाली होती है। वह जीवन को मलिन कर पाप-कर्म में डाल देती है। वह जीव के लिए बंधनकारक है। संसार के लगभग सभी जीव अविद्या के अहंकार में फँसे हुए हैं। अपवाद रूप में कुछ सच्चे साधु संत सत्पुरुष अविद्या से मुक्त होते हैं।

ऐसे आत्मज्ञानी संत सामान्यजनों के कल्याण की कामना/इच्छा करते रहते हैं। उनकी संगत में सामान्य मनुष्य भी आत्मज्ञानी बन जाता है। संतो के उपदेश एवं कृपा से उनके भीतर का अहंकार आदि निकल जाता है। फलतः वे सृष्टि के हर पदार्थ में परमेश्वर की व्यापकता प्रतीत करने लगते हैं। वे भेद-भाव रहित हो जाते हैं। जैसे आकाश सर्वव्यापक अनंत अवकाश तत्त्व है, सर्वश्रेष्ठ महाभूत है, उसी प्रकार परमेश्वर सर्वव्यापक है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'खं ब्रह्म' अर्थात् सब ब्रह्म ही है; अंतः आकाश में ब्रह्म है। सच्चा प्रेमी साधक साधु संत द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर अविद्या के बंधन से मुक्त हो जाता है। अंत में वह मुक्तावस्था प्राप्त कर अलौकिक सुख-संतोष और आनंद का अधिकारी बन जाता है, यह सत्संग का प्रताप है।

सत संगत में सुख बड़ा, जो करिजाने कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलिमल ढारें कोय।।

■

पलि पलि कनि पुकार, कुठा दरिद फिराक जा,
पसण काणि पिरींअ जे, रुअनि ज़ारौं ज़ार,
सामी चए सरीर जी, रखनि कान संभार,
आउ मिलु जानी यार, न त ड्रियूं था दमु दर्द में.

प्रियतम परमात्मा के विरह से दुखी जनों की दशा का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं, ''प्रियतम परमात्मा के विरह में पीड़ित जन हर क्षण प्रभु को पुकार रहे हैं। प्रियतम परमात्मा के दर्शन के लिए रोते-बिलखते रहते हैं। वे ऐसे दीवाने बन गये है कि उन्हें अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं है। वे पुकार कर कह रहे हैं कि हे प्रभु, तुम जल्द आकर हमसे मिलो, नहीं तो हम तुम्हारे विरह की पीड़ा में दम तोड़ देंगे। (मर जाएँगे।)''

प्रियतम परमेश्वर के प्रेम का बाण जब भक्त के हृदय में बिंध जाता है, तब भक्त का हृदय घायल हो जाता है और वह तब तक तड़पता रहता है, जब तक उसे परमेश्वर के दर्शन नहीं होते। वह रोता रहता है, प्रियतम की राह निहारते निहारते आँसू बहाता रहता है। प्रभु को पुकारते पुकारते उसकी जीभ छिल जाती है। विरह की वेदना मानो उसे मार ही डालती है। ऐसी वेदना या पीड़ा का अनुभव संत मीराबाई ने भी किया है और गोपियों ने भी। 'ए री, मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोउ।' कहने वाली मीराबाई श्रीकृष्ण के विरह में तड़पती दिखाई देती हैं। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियाँ उनके विरह में रो-रो कर पागल-सी बन जाती है। प्रियतम परमेश्वर के बिना उनकी दशा शोचनीय बन जाती है। वे प्रतिक्षण श्रीकृष्ण को पुकारती रहती हैं।

सामी साहब ने जिन प्रेमी भक्तजनों की अंतर्दशा का वर्णन किया है, वे भी परमात्मा के दर्शन के प्यासे हैं। वे विरहावस्था में पीड़ा और वेदना का अनुभव कर रहे हैं। सदा रोते रहते हैं। प्रभु-मिलन की आस के सिवाय उनकी और कोई अभिलाषा नहीं है। वे संत मीराबाई समान 'प्रेम-दीवाने' है। उन्हें अपने शरीर की भी सुधि नहीं है। केवल पुकार रहे हैं- 'हे प्रभु ! जल्दी आओ। नहीं तो तुम्हारे विरह में हमारे प्राण निकल जाएँगे।' मीराबाई के शब्दों में,

पिया बिन रह्यो न जाय।
तन मन मेरे पिया पर वारूं, बार-बार बलि जाय।।
निस्दिन जोऊं बाट पिया की, कब रे मिलोगे आय।।
मीरा के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाय।।

■

पूॼें कोहु पथर, तूं चरिया चेतन खे छॾे,
जंहीं साधन सिधि कया, तंहिंजी करि नजर
साखी ॿोले सभ में, थो व्यापकु चर अचर,
सामी अजर अमर, छॾे पूॼि न पिंड खे.

सामी साहब मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं, ''हे मनुष्य! तुम चेतन (परमेश्वर) को छोड़ कर पत्थर (अचेतन/जड़) को क्यों पूज रहे हो? अरे, तुम उस (परमेश्वर) पर दृष्टि डालो, जिसने संसार के सभी साधन सिद्ध किये हैं। (यह सारी सृष्टि रची है।) वह चेतन, परमेश्वर ही सभी चल-अचल अर्थात् जीवों और जड़ पदार्थों में साक्षी बन कर बोल रहा है। हे मनुष्य! परमेश्वर अजर-अमर है, उसको छोड़ कर तुम नाशवान पिंड (देह, शरीर) की पूजा मत करो।''

परब्रह्म के अनेक नाम हैं। ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा, विश्वंभर, सर्वेश्वर, भगवान, सर्वज्ञ, साक्षीरूप, आत्माराम, सच्चिदानंद, राम, आत्मचैतन्य, आत्म-स्वरूप, ॐकार, प्रणव आदि एक परब्रह्म के ही नाम हैं। परब्रह्म ने ही यह सारा ब्रह्मांड, विश्व रचा है। परब्रह्म विश्व के कण-कण में व्याप्त है। वह अनंत है, अनंत, निर्गुण-निराकार है। वह चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। शाश्वत ब्रह्म को देखने के लिए सतगुरु की शरण में जाना चाहिए। सतगुरु ही मनुष्य के अज्ञान/अविद्या का आवरण हटा कर अंतर्ज्ञान प्रदान करते हैं। अंतर्ज्ञान द्वारा मनुष्य को परब्रह्म/परमेश्वर की अनुभूति हो सकती है।

सामी साहब उस चेतन परमेश्वर की पूजा करने की सलाह देते हैं। उनके विचारानुसार मनुष्य को पत्थर जैसी अचेतन, निर्जीव वस्तु की अपेक्षा चेतन परमेश्वर की भक्ति करनी चाहिए। वही एक साक्षीरूप में इस चराचर, चेतन और जड़ जगत में निवास करता है। वह अविनाशी एवं अमर है। उसी की भक्ति करने से जीवन सार्थक बन सकता है। वह परमेश्वर तुम्हारे हृदय में ही बसा हुआ है। उसको पहचानो और उसी से मिल कर एकरूप हो जाओ। बाहर वाले जड़ पत्थर पूजने से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

पाहन पूजैं हरि मिलैं, तो मैं पूजूं पहाड़।
तांते ये तों चाकी भली, जो पीस खाय संसार।।
पत्थर केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इसी भरोसे जे रहे, ते बूड़े मंझधार।।
(कबीर)

■

फुरने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा,
भुली भवनि पाणही, चरिया चौरासी,
सामी बचियो को साध संगि, विरलो वेसाही,
अलखु अबिनासी, घिरी लधो जंहिं घर में.

सामी साहब कहते हैं कि संसार के जीव (मनुष्य) व्यर्थ के विचारों, भ्रमों संशयों में फँस गये हैं। अज्ञानी, नासमझ जीव चौरासी लक्ष योनियों में भटक रहे हैं। किन्तु संसार में विरला कोई ऐसा जीव (मनुष्य) होगा, जिसने पूर्ण विश्वास के साथ साधु-संत का संग किया होगा और अगोचर, अविनाशी परमेश्वर (ब्रह्म) को अपने घर (मन) में ढूँढ लिया होगा। परमेश्वर को प्राप्त किया होगा।

मनुष्य जन्म लेता है। बड़ा हो जाने पर वह माया अथवा अविद्या के कुचक्र में फँस जाता है। जीव के सहज छह वैरी (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) उसे घेर लेते हैं। वह अपने मूल स्वरूप ('अहं ब्रह्मास्मि।'= मैं ब्रह्म हूँ।) को भुला देता है । अपने शरीर/देह को ही सब कुछ समझ कर 'मैं कर्ता, मैं भोक्ता, मैं सुखी' कहते हुए वह अनेक भ्रमों में पड़कर व्यवहार करता रहता है। वह भूल गया है कि सच्चा सुख और संतोष या आनंद तो मेरे भीतर ही है। आत्मज्ञान के अभाव में उसका मन बाह्य पदार्थों एवं विषयों की ओर उन्मुख होता रहता है। वस्तुत: आत्माराम हमारे अंत:करण में है और उसी की अनुभूति करना हमारा कर्तव्य होता है। किन्तु यह अनुभूति तब होगी, जब हमारा मन भ्रम-भ्रांतियों से मुक्त होगा।

अज्ञानी या मूर्ख मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को न पहचान कर माया और मोह के बंधनों एवं संशय-भ्रमो में उलझ कर अपना सारा जीवन व्यर्थ ही गँवा देते हैं। ऐसे लोग चौरासी लक्ष योनियों में भटकते रहते हैं। उन्हें मुक्ति नहीं मिलती। कोई मनुष्य जब किसी सच्चे साधु-संत में दृढ़ विश्वास रख कर शरण में जाता है, उसे ही आत्मज्ञान के पश्चात् परमेश्वर को पाने का मार्ग मिल जाता है। सत् शिष्य को सतगुरु ही परमार्थ रूपी आत्मविद्या का बोध कराते हैं. सतगुरु ही उसे उसी के हृदय में निर्गुण निराकार परमेश्वर की प्रतीति कराते हैं। फलस्वरूप सत् शिष्य धन्य हो जाता है और फिर मोक्ष मुक्ति का अधिकारी बन जाता है। वह जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है। संत तुलसीदास के शब्दों में-

तुलसी सतगुरु के अहहिं, आनंदमय उपदेश।
संसय रोग नसाय सब, पावै पुनि न कलेस।।

■

बिना साधि-संगति, सामी सुधिरियो कोन को,
जाग॒ी कदु अंदर मों, ब॒ी सभ ममता मति,
पाए ग्याति गुरूअस जी, करि अभेद भग॒ति,
त साखी ड॒िसें सति, चीटीअ ऐं कुंचर में.

सामी साहब कहते हैं कि साधु संत की संगत के बिना कोई भी मनुष्य सुधर नहीं सकता। अर्थात् ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए तुम भी जाग्रत हो कर अपने अंदर से मोह, ममता आदि विकार निकालो। उसके पश्चात् सत्गुरु से अंतर्ज्ञान प्राप्त कर परमेश्वर की अभेद भक्ति करो। ऐसा करने से ही तुम सत्य (परमेश्वर) के दर्शन कर सकोगे। तब तुम्हें चींटी और कुँजर (हाथी) में भी एकही परमेश्वर दिखाई देंगे।

सच्चे संत सत्य का आचरण करने वाले होते हैं। संत ब्रह्मज्ञानी होते हैं। सच्चे संत ईश्वरस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप होते हैं। उन्हें जिस आत्मानंद का अनुभव प्राप्त होता है, वह समाज को भी अनुभव कराना चाहते है। संतों के संग सहवास में मनुष्य सुधर जाता है। अपना जीवन कल्याणमय और सफल करने के लिए सत्संग रूपी संजीवनी साथ में होना जरूरी है। जिस मनुष्य ने साधु संतों की संगत नहीं की है, वह वेद-पुराण पढ़ने के पश्चात् भी सच्चा लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। अपना चित्त निर्मल और पवित्र करने के लिए सत्संग करना ही चाहिए।

सतसंगति को फल यही, संशय रहहि न लेस।
होवंइ स्थिर शुचि सरल चित्त, पावै पुनि न कलेस।।

सामी साहब भी साधु-संतों की महिमा का वर्णन करते हैं। समाज के हित एवं कल्याण के लिए प्रतिबद्ध संतों के सहवास एवं उपदेश का लाभ प्राप्त करने की बात करते हैं। सत्संग एक आसान मार्ग है जीवन सफल करने का। कहा गया है कि 'सत्संग तारता है और कुसंग डुबाता है।' अच्छे लोगों का, सत्पुरुष एवं सज्जनों का सहवास सदा लाभदायक होता है। संतों की संगत मनुष्य को अधर्म, कुकर्म, झूट-कपट, अविचार और अविवेक से दूर करने वाली होती है। सामी साहब विनम्रता से सलाह देते हुए गुरु का ज्ञान प्राप्त कर भेद-भाव रहित भक्ति करने के लिए कहते हैं।

कबीर कलाह अरु कल्पना, सत्संगति से जाय।
दुःख वासो भागा फिरे, सुख में रहे समाय।।

■

बेअंत जो अंतु, कंहीं पातो कीनकी,
समुझे जो सामी चए, सुजाखो संतु,
ड॒िठो जंहिं अखिनि सां, भेद बिना भग॒वंतु,
जिएँ कामिणि पाए कंतु, रती वते रंग में,

सामी साहब कहते हैं, ''परमेश्वर अनंत है, अपार है, बेअंत है। परमेश्वर की थाह कोई ले नहीं सका है। मात्र कोई जाग्रत सजग संत ही परमेश्वर का अनुभव कर उसे समझ सकता है। ऐसे संत ने ही अपने नेत्रों से, बिना किसी भेद के, भगवंत के दर्शन किये हैं। परमेश्वर के अद्‌भुत दर्शन से वह आनंद-विभोर हो जाता है। ठीक उसी तरह जैसे कोई सुंदर स्त्री अपने प्रियतम पति को प्राप्त कर उसके प्रेम के रंग में रंग जाती है।

जगत् का आदि कारण एवं आधार एक चेतन तत्त्व है। इस तत्त्व को 'ब्रह्म' कहा जाता है। 'बृ' का अर्थ है व्यापक । 'बृ' से 'ब्रह्म' शब्द बना है। जो सर्वव्यापक और अविनाशी है, वह ब्रह्म है। ब्रह्म सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है। वह अनादि, अनंत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, एवं मुक्त है। छांदोग्य उपनिषद् में इसे 'भूमा' कहा गया है। यह ब्रह्म का एक लक्षण है। संतों की दृष्टि में ब्रह्म/परमेश्वर ही अंतिम या परम सत्ता है। वेदांत के अनुसार ब्रह्म ही एक अद्वितीय 'सत्' तत्व है। ब्रह्म, माया और ईश्वर, इन तीनों को मिला कर 'परमेश्वर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'सच्चिदानंद' भी इन्हीं का नाम है। सामान्य रूप से बोलने में 'ब्रह्म' और 'ईश्वर'/'परमेश्वर' एक ही सत्ता के द्योतक हैं। सूक्ष्म अर्थ की दृष्टि से इन दोनों में अंतर देखा जा सकता है। 'ब्रह्म' का स्वरूप नित्य निर्गुण है, जो निराकार है, अगोचर और अनंत है, अगाध है। ज्ञानीजनों को यह स्वरूप पसंद है। भक्त-जन 'ईश्वर' के स्वरूप से एक रूप होकर पवित्र बन जाते हैं। वे प्रेममय भक्ति द्वारा ईश्वर-स्वरूप की प्राप्ति करते हैं। महाकवि सामीजी भी यही बात कहते हैं। कि अंतर्ज्ञान प्राप्त करने वाला कोई संत ही परमेश्वर की थाह ले सकता है। अर्थात् ऐसा संत, जो सजग है, जिसने अपने मन से भेदभाव निकाल दिया है, जो द्वैत-भावना से रहित हो गया है, वही परमेश्वर को पा सकता है तथा उसके मिलन का अलौकिक आनंद प्राप्त कर सकता है। लौकिक प्रेम हो या अलौकिक प्रेम हो, दोनों में प्रियतम-प्रियतमा की एकरूपता एवं तन्मयता जरूरी है।

नयनों की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय॥

■

बेहदि बेपरिवाहु, सामी ॾिठा संत जन,
रखनि न रतीअ जेतिरी, चित में चिंता चाह,
चढ़िया अनभइ अछ ते, रहति सचीअ जी राह,
जाॾे कनि निगाह, ताॾे सॼणु सामुहूँ.

वेदांत के अध्ययनकर्ता एवं कवि सामी जी इस श्लोक में संतों की विशेषताओं के संबंध में कहते हैं कि ''मैंने अपने जीवन में संतजनों को अति निश्चिंत, बेफ़िक्र, बेपरवाह देखा। ईश्वर को छोड़कर वे अन्य किसी का परवाह नहीं करते। संतों के मन में तिल मात्र भी चिंता नहीं रहती और वे रत्ती-भर भी चाह-कामना-इच्छा नहीं करते। सच्चे संतों को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ होता है। वे निर्मल होते हैं और सन्मार्ग पर चलने वाले होते हैं। वे सृष्टि के हर पदार्थ में परमेश्वर को देखते हैं। सच्चे संत जिधर दृष्टि करते हैं, उधर इन्हें प्रियतम परमात्मा ही दिखाई देता है।

संत ईश्वरस्वरूप और ब्रह्मस्वरूप होने के कारण ब्रह्मज्ञानी ही होते हैं। ऐसे ही पूर्ण पद को प्राप्त संतजन संसार में रहते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं कमल फूल के समान। 'ब्रह्मज्ञानी सदा निरलेप, जैसे जल में कँवल अलेप।' - (गुरु अर्जुन देव) सच्चे संतों का किसी बात की चिंता और चाह नहीं होती। जिनके अंतर्ज्ञान प्राप्त हो चुका है, जिनके मन में भगवान का निवास है, जो संसार की प्रत्येक वस्तु में परमात्मा की झलक पाते हैं, भला उन्हें किस बात की चिंता या चाह होगी ? उनकी सारी मनोकामनाएँ तो परमेश्वर ने पहले ही पूर्ण कर दी हैं। उनके मन से द्वैत और अन्य विकार नष्ट हो जाने के कारण वे निर्मल और पवित्र हो गये होते हैं। वे जिधर भी नजर डालते हैं, उधर परमेश्वर दिखाई देते हैं।

वस्तुतः संत परमात्म वस्तु अथवा सत् वस्तु से एकरूप हो चुका व्यक्ति होता है। संतों के जीवन का एक प्रमुख उद्देश्य होता है सामान्यजनों का, मनुष्यों का आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन करना। वे अपने अनुभव द्वारा लोगों को सयाना, स्वार्थ-रहित और नीतिमान बनाने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करते रहते हैं। लोगों को भगवान की भक्ति की ओर उन्मुख करना उनका महत् कार्य होता है। स्वयं को प्राप्त आत्मानंद वे सब को प्राप्त करवाने की कामना करने वाले होते हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में सच्चे संत निरिच्छ, निःस्वार्थी, त्यागी और उदासीन/विरक्त होते हैं।

आशा तजि, माया तजै, मोह तजै अरु मान।
हरष शोक निंदा तजै, कहै कबीर संत जान।।

■

ॿधो सभु जहानु, माया फासीअ फंद रे,
परचिया रहनि पिंड सां, भुलाए भॻिवान,
जाॻि कढनि कीनकी, अंदर मों अभिमानु,
को सामी पुरखु सुॼाणु, समुझी चढ़ियो सीर ते.

माया और माया के जाल में फँसे हुए मनुष्यों के संबंध में सामी साहब कहते हैं कि माया (अविद्या) ने सारे संसार को अपने फाँसी के फंदे में जकड़ लिया है। ऐसे बँधुआ मनुष्यों ने अपने शरीर को सब कुछ और सत्य समझ कर संतोष पा लिया है तथा भगवान को भुला दिया है। वे सजग हो कर अपने अंदर से अभिमान नहीं निकालते। कोई सुजान/ज्ञानी सत्पुरुष होगा, जिसने 'सत्य' को समझ कर अपने हृदय को निर्मल बना कर तथा मँझधार को पार कर प्रभु को प्राप्त किया होगा।

माया क्या है ? माया प्रकृति है, माया अविद्या है, माया मन के अंदर समाया हुआ अज्ञान है। माया जीवन और मृत्यु, अच्छा और बुरा, ज्ञान और अज्ञान का मिश्रण है। वह सब, जिसमें हम बँधते हैं, माया है। माया व आवरण/पर्दा है, जो आत्मा को ढँकता है। मनुष्य का मन माया से प्रभावित हो कर ही सब कुछ सोचता है। माया जन्य सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। माया का अस्थिर चंचल भोग, भोक्ता को भी अस्थिर और चंचल बना देता है। इसलिए माया के बंधन से मुक्त होना चाहिए। कबीर जैसे संतों ने माया को 'ठगनी' कहा है। सामी साहब ने माया को 'डायन' और 'बुरी बला' कहा है। साथ ही माया के 'मोहिनी' स्वरूप से बचने की बात भी कही है। क्योंकि माया के प्रभाव से ही मनुष्य स्वयं को 'देह' मानकर अभिमान करने लगता है। वह अपने शरीर से प्रेम करते हुए परमेश्वर से विमुख हो जाता है। बहुरूपिणी माया ने ठगनी बन कर सभी मनुष्यों को ठगने का कार्य शुरू कर दिया है। इस माया को भी ठगने का सामर्थ्य केवल संत-सत्पुरुष में होता है, जो न केवल स्वयं माया के प्रभाव से दूर रहते हैं, अपितु संसार को भी उसके प्रभाव से दूर रखने का महत् प्रयास करते रहते हैं। ज्ञानी जन ही माया से मुक्त होते हैं। संतों की संगत और साधना द्वारा सत्य ज्ञान से माया-मोहिनी का मिथ्या रूप या आवरण हट सकता है। सतगुरु की शरण में जाने से सत् शिष्य माया से मुक्त हो जाता है।

कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि।
कोई एक साधु ऊबरा, तोड़ी कुल की कानि।।

■

भॻति ॾिनी भॻवान, जनि खे परिची पांहिंजी,
सहजे थिया सामी चए, से नेही निरिॿाण,
जनम मरण दुख सुख जी, कलिपत करिनि कान,
रहनि मंझि जहान, सदा अलेपु आकास जां.

भक्ति की शक्ति और भगवान की दयालुता का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं कि जिन प्रेमीजनों को परमेश्वर ने प्रसन्न होकर अपनी भक्ति प्रदान की है, वे सहज ही इच्छा-रहित होकर मुक्त हो गये। वे अनेक सन्सों/भ्रमों से भी मुक्त हो गये। परमेश्वर की भक्ति निष्ठापूर्वक करने से अब वे किसी प्रकार के सुख-दुःख अथवा जन्म-मृत्यु की चिंता नहीं करते। वे इस लोक में आकाश की तरह निर्लिप्त/अलिप्त और निष्कलंक रहकर भक्ति करते रहते हैं।

परमेश्वर के प्रति प्रेम भक्ति है। सगुण परमात्मा और जीवन का निष्काम प्रेम-संबंध भक्ति है। सरल और हर स्थान पर प्राप्त होने के कारण पृथ्वी लोक में भक्ति का प्रचार-प्रसार बहुत है। भक्ति का शाब्दिक अर्थ है भगवान की सेवा करना। भगवान का अस्तित्व हर स्थान पर और हर पदार्थ में होने से जगत् की सेवा ही भगवान की सेवा मानी गयी है। भक्ति क्या है ? 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' (शांडिल्य), ईश्वर से अत्यधिक प्रेम भक्ति है। भगवान विष्णु के श्रवण, कीर्तन, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, स्मरण एवं आत्मनिवेदन (शरणागति) को 'नवधा' भक्ति' कहते हैं। भक्ति साधन भी है और साध्य भी । ईश्वर को अपना स्वामी, मित्र, माता, प्रियतम आदि मान कर दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की भक्ति की जाती है। भक्तजन भक्ति को मोक्ष-मुक्ति से भी श्रेष्ठ समझते हैं। परमात्मा की अनन्य भक्ति मनुष्य के अहंकार को विगलित कर देती है, उसे देहाभिमान से रहित कर देती है। सच्चा भक्त अंतर्यामी प्रभु को अपने मन मंदिर में आसीन करके उसे ही अपना सब कुछ मानकर उसकी प्रेरणा के अनुसार कर्म करता है और फिर उसे ही अपने कर्म अर्पित कर देता है। मनुष्य के चित्त को निर्मल कर देने वाली अनन्य भक्ति पाकर भक्त धन्य हो जाता है, कृत्यकृत्य हो जाता है। अब उसे किसी का भय नहीं, न मृत्यु का और न ही जन्म-मरण के कुचक्र में पड़ जाने का। संत तुकाराम जी के शब्दो में-

आम्ही जरी आस। जालों टाकोनि उदास।
आला कोण भय धरी। पुढे मरणाचे हरी।।

■

भग॒ति बिना भग॒वानु, कंहीं पातो कीनकी
समुझे को सामी चवे, नेही निर्‌अभिमान,
जंहिंखे ड॒िनो सतिगुरूअ, दीखिया दरसनु दानु,
करे अमिरुत पानु, इस्थित थियो आकास जां.

भक्ति के महत्व को समझाते हुए सामी साहब कहते हैं कि भक्ति के सिवाय परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। किसी ने भी भक्ति किये बिना भगवान को प्राप्त नहीं किया है। यह तथ्य वही सच्चा प्रेमी समझ सकता है, जिसके मन में किसी तरह का अभिमान नहीं है। ऐसे प्रेमी भक्त पर सतगुरु कृपा कर दीक्षा देते हैं। वे उस प्रेमी को प्रभु के दर्शन करने का दान देते हैं। फलस्वरूप वह अमृत का पान कर भक्ति-रस का आनंद प्राप्त करते हुए आकाश जैसा स्थिर और निर्मल बन जाता है।

अहंशून्य सेवा ही भक्ति है। जो भक्त नहीं है, वह विभक्त कहा जा सकता है। यदि हृदय में भक्ति की आर्द्रता नहीं है, तो केवल विद्वत्ता और पारायण का कोई महत्व नहीं है। नारदीय भक्ति परम प्रेम रुपा और अमृत स्वरूप मानी गयी है। वह प्राप्त हो जाने पर मनुष्य अमर हो जाता है, धन्य हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है। भक्ति की कृपा हो जाने पर मनुष्य किसी से द्वेष नहीं करता; शोक नहीं करता। अपने सारे कर्म भगवान को अर्पण कर डालता है। कभी भगवान का विस्मरण हो जाने पर वह अति व्याकुल हो जाता है। वस्तुत: भक्ति की महिमा अनिर्वचनीय है। भक्ति करने वाला सच्चा साधक संसार को भूल जाता है। उसे अपनी देह का भी विस्मरण हो जाता है। इस प्रकार मन और बुद्धि प्रभु को समर्पित कर देना भक्ति है। भक्ति मानो मन का स्नान है। मुक्ति की शक्ति ही भक्ति है। भक्ति प्रेम का उदात्त स्वरूप है। भक्ति ज्ञान-प्राप्ति का साधन है, मन को सुधारने का सरल मार्ग है, प्रेम, आर्द्रता, विश्वास, निष्ठा आदि सभी मधुर भाव ईश्वर की ओर उन्मुख करने पर भक्ति की जा सकती है, जिससे जीवन पवित्र बन जाता है। सामी साहब ऐसी भक्ति करने की बात करते हैं, क्योंकि इसके बिना प्रभु को पा सकना कठिन है। अर्थात् सतगुरु की कृपा से ही ऐसी भक्ति प्राप्त हो सकती है और प्रभु के दर्शन किये जा सकते हैं।

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु हो सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरण भाग मिलाय।।
(कबीर)

■

भगति मंझि भगवंतु, जीएं गंधु फुलनि में,
कोड़िनि में को हिकिडो, समुझे संतु महंतु,
जो कलिपत कढी जीअ मों, सामी थियो बलवंतु,
जंहिंजो आदि न अंतु, सो डेवु डिठाईं डेहि में.

भक्ति और भगवान की एकरूपता का वर्णन करते हुए महाकवि सामीजी कहते हैं, ''जिस प्रकार फूलों में उनकी सुगंध समायी हुई रहती है, उसी प्रकार भगवान भक्ति में समाये हुए हैं। करोड़ों मनुष्यों में कोई एक ऐसा सत्पुरुष, संत-महंत होगा, जो यह तथ्य समझकर अपने अंदर से संशय, भ्रम आदि निकाल कर बलवान बन गया होगा। ऐसा सत्पुरुष ही भक्ति द्वारा अपनी देह में ही अनादि अनंत परमेश्वर के दर्शन करता है।''

शांडिल्य मुनि के 'भक्ति-सूत्र' के अनुसार 'परमेश्वर से परम अनुराग (प्रेम) करना भक्ति है।' - (सा परानुरक्तिरीश्वरे।) भगवान को भक्ति प्रिय है। परमेश्वर के दर्शन करने के लिए, प्रभु की प्राप्ति के लिए, आत्म-साक्षात्कार के लिए भक्ति आवश्यक मानी गयी है। परमेश्वर को मात्र फल, फूल, पत्र या पानी भी यदि भक्ति-भाव से अर्पण किया जायँ तो प्रभु प्रसन्न होते हैं। क्योंकि भगवान भक्ति में ही समाये हुए हैं। जगत में मात्र मनुष्य ही भक्ति करने का अधिकारी है। वह नौ प्रकार की भक्तियों में से किसी भी प्रकार की भक्ति द्वारा भगवान की अनन्य भक्ति कर अपना जीवन सफल कर सकता है। नारद मुनि कहते हैं कि अपने सभी कर्म भगवान को अर्पण करना और भगवान का स्मरण न करने से व्याकुल होना 'भक्ति' है। भागवत पुराण में कहा गया है कि भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करना मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। यह भक्ति निष्काम और नित्य होनी चाहिए। क्योंकि भक्ति में ही भगवान निवास करते हैं। जिस प्रकार फूलों की सुगंध फूलों में ही रहती है, अग्नि काष्ठ/लकड़ी में रहती है, बड़वाग्नि समुद्र के अंदर ही रहती है, उसी प्रकार भगवान भक्ति के अंदर ही स्थित हैं। अर्थात् यह रहस्य विरला कोई संत-महंत ही जान सकता है। वही अपने आत्मस्वरूप को पहचान कर परमेश्वर की भक्ति करता है और ज्ञानी बन जाता है। आत्मज्ञान द्वारा वह निर्मल हो कर परमेश्वर के दर्शन का अधिकारी बन जाता है। परमेश्वर की भक्ति मानो मोक्ष-प्राप्ति की सीढी है।

भक्ति नसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाम।
जिन-जिन मन आलस किया, जनम-जनम पछेताय॥

■

भावना करे भॻतु, मिलाए महबूॿ सां,
भावना विझी भरम में, नितु रुआरे रतु,
समुझी ॾिसु सामी चए, छॾे मोह ममतु,
गिरहस्ती अऊं विरिखतु, भावना में भासी रहियो.

भावना (विचार, मनसा, कल्पना) की प्रबलता का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं कि मनुष्य की भावना ही उसे भक्त बना कर परमेश्वर से मिलाती है। यही भावना अनेकलोगों को भ्रम और संशय आदि ख्यालों में डाल कर दुख देती है और खून के आँसू रुलाती है। इसलिए सामी कहते हैं, हे मनुष्यज! तुम विवेक से विचार कर और मोह-ममता का त्याग करो। भावना तो सभी मनुष्यों में होती ही है, फिर चाहे वह गृहस्थ (घर-बार वाला) हो या बिरक्त (वैरागी) हो। सब भावना में ही भासमान हो रहे हैं।

भावना मन की वृत्ति है। भावना का अर्थ है मानसिक धारणा, कल्पना, विचार या इच्छा। वाल्मीकि के शब्दों में, '**यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी**'। = जिसकी जैसी भावना होगी, वैसी सिद्धि प्राप्त होगी। अपनी-अपनी भावना के अनुसार ही सब को फल की प्राप्ति होती है। '**जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।**' हमारी जैसी भावना, कल्पना या दृष्टि होगी, वैसा ही हम देखते और सोचते हैं। भावना शुद्ध होगी तो फल भी शुद्ध और सुष्ठु मिलेगा किन्तु भावना अगर अशुद्ध होगी तो फल भी वैसा ही मिलेगा। भावना के दो प्रकार हैं- (1) लौकिक (2) अलौकिक/ईश्वरीय। **लौकिक** भावना के भी दो भेद हैं- 1. निम्न स्तर की भावना- इसमें सांसारिक भोग भोगने की कामना रहती है। 2. क्षेत्रीया अर्थात् यज्ञ आदि कर परलोक के सुख भोगने की कामना। **ईश्वरीय** भावना में मोक्ष-मुक्ति के लिए ईश्वर का चिंतन किया जाता है। आध्यात्म में भावना शुद्ध होने पर बल दिया जाता है। सच्ची भावना द्वारा ही उस 'सत्य'/ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा जप, तप, ध्यान, तीर्थस्थानों का पर्यटन आदि सब व्यर्थ है।

भावना के कारण ही मनुष्य अच्छा-बुरा, छोटा-बड़ा, सच्चा-झूठा, ज्ञानी अज्ञानी आदि बनता है। यही भावना मनुष्य को परमेश्वर से भी मिलाने की बात सामीजी कहते हैं। सिंधी के महान संत स्वामी टेऊँरामजी के शब्दों में-

हे संसारी, चित्त उदारी, भावना तूं करि भली।
करि हुशियारी, बणु विचारी, गैर वारी छॾि गली॥

■

मनु मथुरा, दिलि दुवारिका, काया मंझि कासी,
चेतनु वसे चित में, अलखु अबिनासी,
पेही ॾिसे पाण में, को विरलो वेसासी,
वञी थिए वासी, बेहदि बेगम पुरि जो.

सामी साहब कहते हैं, ''अलख, अविनाशी और चेतन तत्त्व (परमेश्वर) तो हमारे चित्त में ही निवास करता है। इसलिए मनुष्य का मन ही मथुरा है, उसका दिल (मन) ही द्वारका है और काया (शरीर, देह) में ही काशी तीर्थस्थान स्थित है। यह तथ्य कोई विरला विश्वासी मनुष्य ही अपने मन में झाँक कर देखता है। ऐसा ही अंतर्ज्ञानी मनुष्य बेगमपुर (परलोक) का निवासी बन कर परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त करता है।

सर्वेश्वर, चेतन-तत्त्व, परमेश्वर मनुष्य के चित्त में भी स्थित रहता है। यह अंतरात्मा चर्म-चक्षुओं से दिखाई नहीं देता। परमात्मा का समूचा ज्ञान होना जरूरी है। यह समूचा/समग्र ज्ञान क्या है? इसका अर्थ यह है कि ज्ञान और विज्ञान, इन दो स्तरों पर परमात्मा को जानने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। हम यह मान कर चलते हैं कि इस चराचर सृष्टि में परमेश्वर का अस्तित्व है। किन्तु यह एक सतही, ऊपरवाली बात हो गयी। इससे परमेश्वर की प्रतीति नहीं होती। विज्ञान का अर्थ है, हमारी इंद्रियों को विश्व के दृश्य स्वरूप का ज्ञान, जिसमें असीम विविधता, विचित्रता, परिवर्तनशीलता एवं आकार-भिन्नता आदि दिखायी देती है। विश्व की इस विविधता का ज्ञान अथवा विश्व-ज्ञान ही 'विज्ञान' है। अब प्रश्न है कि 'ज्ञान' क्या है? मराठी संत समर्थ रामदास स्वामीजी के शब्दों में कहें, तो

ओळखावे आपणासी आपण। या नाव ज्ञान ।।

अर्थात् अपने आप को, स्वयं को पहचानना 'ज्ञान' है। स्व-स्वरूप को पहचाना जरूरी हैं। हमें, हमारे शरीर को जीवित रखने वाली चेतना हमारे अंदर है। इस चेतना के कारण हमारे एक स्वभाव है, भाव-भावना है, विचार-विकार है। इस चेतना या आत्मा को पहचानना ही ज्ञान है। अर्थात् आत्म-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। यह ज्ञान होना अनिवार्य है। परमेश्वर हमारे अंदर ही है, उसे बाह्य पदार्थों में ढूँढने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। यही तथ्य सामीजी ने हमारे सामने रखने का प्रयत्न किया है। संत कबीर कहते हैं-

मोको कहाँ ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।

■

महबत जी मिसिरी, खाधी जंहिं गुर गियाति सां,
सामी सुख संसार जा, तंहिंखों विया विसिरी,
कलिपत काल दीवार खों, पियो परिची पारि किरी,
अचे की न फिरी, जनम मरण जे दुख में.

ईश्वर के प्रति प्रेम-भावना का उल्लेख करते हुए सामी साहब कहते हैं कि जिस मनुष्य *ने सतगुरु के ज्ञान/बोध द्वारा प्रेम रूपी मिश्री/ मिसरी खाई है, उसको इतना आनंद प्राप्त हो गया है कि वह संसार के सभी भौतिक सुख भूल गया है। ऐसे परमेश्वर-प्रेमियों के सभी भ्रम और संशय आदि नष्ट हो गये हैं। उनका मनुष्य-जन्म सफल हो गया है। अब वे मुक्त हो गये हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में फँस कर पुनः दुःख भोगने वाले नहीं है।*

'चैतन्य चंद्रोदय' में कहा गया है,

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरङ्गा इव वारिधौ।
उन्मज्जित निमज्जित यत्र स प्रेम संज्ञकः।।

अर्थात् 'जिस में सभी रस, सभी भाव निमज्जित/डूबे हुए हैं, वह रस-सिंधु ही प्रेम है।' प्रेम जगत का कारण है क्योंकि परमेश्वर स्वयं ही प्रेम का स्वरूप है। विश्व के कण-कण में यह प्रेम-तत्त्व विद्यमान है। सारा संसार प्रेम के आधार पर ही टिका हुआ है। सारा संसार प्रेम का ही उल्लास और विकास है। प्रेम का सहारा लेकर परमात्मा के मंगलमय आँगन में पहुँच कर प्रेम का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। परमात्मा से अनन्य भाव से प्रेम करने वाला मनुष्य न केवल अपने स्वरूप को जान लेता है अपितु सत्य की पहचान कर आत्मा के दिव्य दर्शन भी कर लेता है। सामी साहब भी इसी दिव्य एवं अलौकिक प्रेम का उल्लेख करते हुए उसके मिठास की महत्ता वर्णित करते हैं। परमात्मा की प्रीति का स्वाद एक बार मिल जाने पर अन्य सब स्वाद तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। संसार के सभी छोटे-बड़े सुख फीके लगने लगते हैं। प्रभु के प्रेम या भक्ति से मनुष्य सांसारिक भ्रमों एवं संसों से मुक्त हो जाता है इतना ही नहीं, वह मृत्यु की दीवार लाँघ कर चौरासी के कुचक्र से छूट जाता है। जिस किसी ने प्रियतम परमेश्वर के प्रेम का प्याला पिया है, वह अलौकिक आनंद प्राप्त करता है।

प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय।।

■

मानुख जो अवतारु, कंहिं मिलियो पूरन पुन ते,
तंहिंजी करियां केतिरी, वडा़ई विसतारु,
सहसनि में सामी चए, को जा़णे संतु सचारु,
कयो जंहिं दीदारु, गुरगम परिची पांहिंजो.

अनमोल मनुष्य-जन्म की महत्ता का उल्लेख करते हुए महाकवि सामी कहते हैं, ''मनुष्य के रूप में जन्म मिलना किसी पूर्व पुण्य का फल है। मनुष्य जन्म की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन कैसे करूँ? हजारों में कोई विरला संत होगा, जिसको इसका ज्ञान होगा। अर्थात् जिसने अपने सद्गुरु के द्वारा प्राप्त अंतर्ज्ञान द्वारा अपने (स्वरूप के, अंतरात्मा के) दर्शन किये होंगे।''

मनुष्य-जन्म हीरे के समान अनमोल माना गया है। चौरासी लक्ष योनियों में भटकने के बाद किसी पुण्यवान प्राणी को मनुष्य देह प्राप्त होती है। यह सभी जन्मों में श्रेष्ठ है। इस देह में परमात्मा का निवास है। आत्माराम/पुरुषोत्तम परमेश्वर सभी देहों में रहता है। आत्मा को धारण करने के लिए मनुष्य देह की आवश्यकता होती है। देह के कारण ही आत्मा टिक पाती है। देह और आत्मा के संगम से संसार में बड़े बड़े कार्य होते रहते हैं। मानव देह होने से ही मुख्य परमात्मा की प्राप्ति होती है। देह के कारण कर्मयोग, उपासना मार्ग एवं ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्ग आदि का आचरण होता है। योगी, वैरागी, तपस्वी, साधु-संत आदि इस दुर्लभ देह द्वारा ही प्रयत्न करते रहते हैं। आत्मा को भी देह/शरीर धारण कर प्रकट होना पड़ता है। शरीर के कारण ही यह लोक और परलोक सार्थक होता है। अर्थात् देह बिना सब निरर्थक है। किसी पुण्य से प्राप्त इस शरीर द्वारा ही दान-धर्म किया जा सकता है। देह मानो विश्व रूपी वृक्ष का सब से उत्तम फल है। देह के कारण ही मनुष्य भक्ति कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि देह का अतीव महत्व है। सगुण परमेश्वर को भी अवतार लेने के लिए देह की ही आवश्यकता होती है।

सामी साहब भी इसी मनुष्य-जन्म और मानव शरीर की महिमा का वर्णन करते हैं। मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है और किये हुये किसी बड़े पुण्य का फल भी। सिंधी संत कवि सतगुरु स्वामी टेऊँराम जी के शब्दे में-

मोक्ष-मंदिर का द्वार, मानुष चोला है।
आनंद का आगार, मानुष चोला है।
भक्ति का भंडार, मानुष चोला है।
ज्ञान-ध्यान गुलजार चोला है।

■

माया मांझि मगरूरु, मूरख रहनि मति रे,
सति ज॒ाणी संसार खे, सामी सहनि सूर,
कालु न डि॒सनि कंध ते, थो करे नितु कलूरु,
राजा राव मजूर, मारे जंहिं मिटी कया.

संसार के मूर्ख/अज्ञानी मनुष्यों पर माया को कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं कि मूर्ख मनुष्य माया के मोह-जाल में फँसकर अपनी मति/समझ गँवा कर अभिमानी/घमंडी हो गये हैं। इस मिथ्या, झूठे संसार को सत्य जानकर सभी मनुष्य नाना प्रकार के दु:ख सहते रहते हैं। भयंकर मृत्यु उनके कंधों पर आ बैठी है किन्तु अभिमान के कारण अंधे बने हुए वे मनुष्य मृत्यु को देख नहीं पाते। एक ऐसा काल (मृत्यु), जिसने राजा, राव, प्रजा, सरदार और मजदूर आदि सबको मार कर मिट्टी बना दिया है।

अविद्या, अज्ञान का एक अन्य नाम माया है। ईश्वर की आज्ञानुसार कार्य करने वाली उसी की कल्पित शक्ति भी माया है। धन, संपत्ति को भी माया कहा जाता है। सृष्टि का मुख्य कारण भी माया है। परमेश्वर के सत्य स्वरूप पर आवरण/पर्दा डालकर ढँक देने वाली भी माया है। माया के कारण ही जीव परमेश्वर को पहचान नहीं सकता। मनुष्य का मन माया से प्रभावित होकर ही सब कुछ सोचता और करता रहता है। मायाजन्य सभी वस्तुएँ नाशवान है। संसार में सभी दु:ख और चिंताएँ माया के कारण ही हैं। माया का एक रूप धन-दौलत भी है, जिसको पाने की इच्छा और कोशिश सभी मनुष्य करते रहते हैं। आज के समय में तो अर्थ को, माया के इस रूप को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो गया है। हर कोई इसे पाने के लिए इसके पीछे बेतहाशा भागता हुआ दिखाई देता है। यही माया मनुष्य को अभिमानी, घमंडी, मगरूर और अंधा भी बना डालती है। यह सबको अपने मोह-जाल में फँसा कर बांध कर रखने वाली है। अज्ञानी और मूर्ख मनुष्यों पर माया का प्रभाव अधिक पड़ता है। यह उनकी मति/समझ ही छीन लेती है। उन्हें मानो अंधा कर देती है। परिणामत: वे अपनी मृत्यु की आहट भी सुन नहीं पाते, जो उनके बिल्कुल निकट आकर खड़ी हुई होती है। वस्तुत: काल (मृत्यु) किसी पर दया नहीं करता-चाहे व अमीर हो या गरीब!

काल फिरै सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान।
कहै कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकल अभिमान।।

■

मूरख करि न ख्वारु, चोरासीअ में पाण खे,
अगॢहीं रुलिएं केतिरो, हाणे थीउ होशियारु,
मिली महद् जननि सां, पंहिंजो करि उधारु,
अहिड़ो समो सारु, सामी लहंदें कीनकी.

अज्ञानी/मूर्ख मनुष्यों को समझाते हुए सामीजी कहते हैं, ''हे अज्ञानी मनुष्य! तुम स्वयं को चौरासी लक्ष योनियों में भटका कर अपना अहित मत करो। तुम इसके पहले बहुत भटक चुके हो। तब कहीं तुम्हें यह दुर्लभ देह प्राप्त हुई है। इसलिये तुम सजग, होशियार हो जाओ, इस मनुष्य जन्म में तुम संत-महात्मों और सतगुरु से मिल कर अपना उद्धार करो। अपना उद्धार करने के लिए, जीवन सफल करने के लिए ऐसा सुनहला अवसर तुम्हें दुबारा मिलने वाला नहीं है।''

सभी संत-महात्मा कहते हैं कि मनुष्य के रूप में जन्म एक बार ही मिलता है। चौरासी लक्ष योनियों में भटकने और असंख्य दु:ख भोगने के पश्चात् यह अनमोल देह प्राप्त होती है। सभी प्राणियों में मनुष्य जन्म मिलना श्रेष्ठ माना गया है। अत: यह नरदेह धन्य है। सोच-विचार करने और तद्नुसार कृत्य/कार्य करने की अपार शक्ति केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। यह देह मिलने से ही हम ईश्वर की प्राप्ति के लिए, नर-देह सफल करने के लिए एवं मोक्ष के लिए भक्ति कर सकते हैं। अर्थात् यह सब करने के लिए अंतर्ज्ञान आवश्यक है। स्वयं को, अपने आप को पहचानना जरूरी है। मैं मात्र देह नहीं, मैं स्वयं परमात्मा का अंश हूँ, मैं ही परमेश्वर हूँ। (अहं ब्रह्मास्मि।)। इसका ज्ञान मनुष्य-शरीर में ही हो पाता है। हम इसी जन्म में अपने भीतर के अंधकार को, अज्ञान को दूर कर सकते हैं। अन्य किसी जन्म या देह द्वारा यह संभव नहीं है।

साधारण जीव अज्ञानी होते हैं। इस कारण वे माया के भँवर-जाल में उलझ कर अपना अनमोल जन्म व्यर्थ गँवाते हैं। जीवन सफल करने के लिए उन्हें संत-सतगुरु की शरण में जाना चाहिए। उनके मार्गदर्शन और कृपा से अंतर्ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जन्म-मृत्यु के कुचक्र से छुटकारा पाने का मार्ग मिल सकता है। उस मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त कर सकने का यही एक अवसर है। यह अवसर पुन: मिलने वाला नहीं है। अत: अज्ञान की इस निद्रा से जागना जरूरी है।

रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय।।
(कबीर)

■

मूरख करि न माणु, काया माया कुल जो,
अचे हणंदुइ ओचितो, कालु कहारी ॿाणु,
संगी थींदुइ कोन को, बुढो ॿारु जुआणु,
सभुको समय साणु, हलियो वञे हेकिलो.

अज्ञानी मनुष्य को संबोधित करते हुए कहते हैं, ''हे मूर्ख ! तुम अपनी काया (शरीर, देह), माया (धन-दौलत) और कुल (वंश) का अभिमान मत करो । अरे, काल (मृत्यु) अचानक ही आकार तुम्हें ऐसा बाण मारेगा कि तुम उसी क्षण मर जाओगे। तब इन में से कोई भी तुम्हारे साथ नहीं चलेगा। तुम अकेले ही खाली हाथ ऊपर चले जाओगे। समय आने पर सबको अकेले ही जाना पड़ता है, फिर चाहे वह बच्चा हो जवान हो या वृद्ध जन।''

मनुष्य के रूप में जन्म मिलना बड़े पुण्य और भाग्य की बात मानी गयी है। यह जन्म सफल और सार्थक करना मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य को एक तथ्य ध्यान में रखना है कि एक दिन सब यहीं छोड़कर जाना है। मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती। जो जन्म लेकर आया है, उसे कभी न कभी मृत्यु को प्राप्त होना ही है। इस धरती को 'मृत्युलोक' भी इसी कारण कहा गया है। सभी प्राणियों को मृत्यु के मुँह में जाना ही पड़ता है। ज्ञानी लोग यह बात समझते हैं। इसलिए व सतगुरु की शरण में आत्मज्ञान प्राप्त कर और परमेश्वर की भक्ति या भजन कर अपना जीवन सफल करते हैं।

इसके विपरीत जो अज्ञानी या मूर्ख लोग होते हैं, वे घर-गृहस्थी में उलझ जाते हैं। माया के विभिन्न रूप उन्हें अपने मोह-जाल में फँसा लेते हैं। अपनी संपत्ति, अपने शरीर और वंश पर अभिमान करना उनकी वृत्ति बन जाती है। उनकी आँखों पर एक पर्दा पड़ जाता है। परिणामस्वरूप वे स्वयं को बड़ा, महान, सर्वश्रेष्ठ आदि मानने लगते हैं। किन्तु वे नहीं जानते कि मृत्यु उनके पीछे ही खड़ी है, जो उन्हें किसी भी क्षण दबोच सकती है। वे अहंकार के कारण यह भी नहीं सोच पाते हैं कि मरने के उपरांत कोई भी उनका साथ देने वाला नहीं है अथवा सभी जीवों की यही दशा होने वाली है। इस कटु और भयानक सत्य से वे अनभिज्ञ होते हैं।

ऐसे ही जीवों को सामी साहब सचेत करते हुए परमेश्वर के स्मरण, भजन या भक्ति आदि करने की सलाह देते हैं।

काल फिरै सिर ऊपरै, हाथों धरे कमान।
कहै कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकल अभिमान।।

■

मूरख कीन ड॒िसनि, सनमुख सुपेरियुनि खे,
अविद्या जीअ अंधा कया, ड॒िनो पदु पिरियुनि
भरम मंझि भुली करे, था पना नितु पढ़नि,
तप तीरथ बिरित नेम, जग॒ जुहिदु कयो जाग॒नि,
गुफा बन पहाड़ में बुख उञ दुख सहनि,
नाना बेख धरे करे था देहि अमोल दहनि,
बिना साथ–संगति जे, सभि वहनि मंझि वहनि,
के लखाया लहनि, सामी सुपेरियुनि खे.

अज्ञानी, मूर्ख, नासमझ मनुष्यों के संबंध में सामी साहब कहते हैं कि अज्ञान के कारण वे प्रियतम परमेश्वर को अपने सामने खड़ा हुआ देखकर भी नहीं देखते। अविद्या/अज्ञान ने तो सभी जीवों को अंधा कर दिया है। परिणाम स्वरूप वे उस आवरण/पर्दे को हटाकर प्रियतम परमेश्वर को देख नहीं पाते। अज्ञानी जन भ्रम और संशयों में पड़ गये हैं। परमात्मा को पाने के लिए वे यथार्थ मार्ग छोड़ कर बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ने लगे हैं, नित्य नियमानुसार तपस्या करने लगे हैं और तीर्थ स्थानों पर भी जाने लगे हैं। कुछ अज्ञानी जीव पहाड़, गुफा और जंगल आदि निर्जन स्थानों पर जा कर तपस्या करते हैं। कुछ तो अपने शरीर को क्लेश, यातनाएँ आदि देकर अपनी देह को शुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग नाना प्रकार के वेश/भेस धारण कर अपने अनमोल शरीर (देह) को ही जलाने लगते हैं। ऐसे अज्ञानी जीव साधु संत अथवा सतगुरु की संगत करने की अपेक्षा किसी दरिया के प्रवाह की तरह मात्र बहते रहते हैं। इसलिए परमात्मा से दूर ही रह जाते हैं। वस्तुतः प्रियतम परमात्मा को वे मनुष्य ही पा सकते हैं, जिन्होंने सत्संग द्वारा, संत-सतगुरु की कृपा से अपने ही हृदय में परमात्मा को पहचान लिया है।

इस श्लोक द्वारा सामी साहब पुन: जतलाना चाहते हैं कि अज्ञानी जीव ईश्वर को पाने के लिए बाह्याचार, बाह्याडंबर, कर्मकांड आदि में उलझकर व्यर्थ ही अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं। परमेश्वर की प्राप्ति बाह्य साधनों द्वारा नहीं होती अपितु अपने ही हृदय में ढूँढने से होती है। परमेश्वर हमारे अंदर ही है।

सुमिरन तू घट में करै, घट ही में करतार।
घट ही भीतर पाइए, सुरति शब्द भंडार ।।

■

मूरखु विञाए, थो हीरो जनमु हथनि मों,
मिली साध संगति सां, लेखे न लाए,
ॾांवर जियां पाण खे, थो फंद में फासाए,
मुंहुँ मढ़ीअ पाए, सामी ॾिसे कीनकी.

महाकवि सामीजी कहते हैं कि मूर्ख (अज्ञानी) मनुष्य अपना हीरे जैसा मूल्यवान जन्म अपने ही हाथों से व्यर्थ गँवाता है। वह साधु-संतों से मिलकर, उनका सानिध्य प्राप्त कर विवेक से विचार कर सकने का प्रयत्न नहीं करता। वह मकड़ी की तरह अपने आप को अपने ही बुने हुए जाल में फँसा कर बैठा है। इतना ही नहीं, वह कभी अपने अंदर झाँक कर देखने का भी प्रयत्न नहीं करता।

मनुष्य को देह रूपी यह वस्त्र, यह चोला, अमूल्य जन्म ईश्वर ने दिया है। मनुष्य के रूप में जन्म लेना बड़े भाग्य का लक्षण माना गया है। पिछले जन्म में किये गये पुण्यों का फलस्वरूप यह नरदेह प्राप्त होती है। यह जन्म बार-बार नहीं मिलता यह जन्म मानो एक सुअवसर है। इस जन्म में भक्ति करके, हरि का स्मरण करके अपना जीवन सार्थक किया जा सकता है। जन्म-मरण के दुःख से मुक्ति पायी जा सकती है। अपने जन्म को सफल करने में ही मनुष्य का कल्याण है। सामी साहब भी यही बात कहते हैं कि अज्ञानी/मूर्ख मनुष्यों को साधु-संतों से मिलकर उनसे आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। विवेक बुद्धि द्वारा आत्म स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए। भक्ति या हरि के नामस्मरण द्वारा ही वह मुक्ति का द्वार खोल सकता है।

संसार में तो ज्ञानी और अज्ञानी, दोनों प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं। इनमें अज्ञानी जीवों की संख्या अधिक होती है। माया के प्रभाव के कारण ऐसे नासमझ इन्सान प्रभु को पहचान नहीं पाते। अहंकार, मोह आदि विकारों के कारण ये जीवन मकड़ी के जाल समान स्वयं ही अपना जाल बुनकर उस में फँसे रहते हैं। विवेक के अभाव में ये लोग अपने मन को शुद्ध एकाग्र नहीं कर सकते। सतगुरु, साधु-संत से मिलकर अपने मन को संशय रहित बनाने की चाह भी उन में नहीं होती। इंद्रियों के वश में रहने वाले ऐसे जन अपनी जीवन ही बर्बाद कर डालते हैं।

कंचन केवल हरि भजन, दूजा काँच कथीर।
झूठा आल जंजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर॥

■

मूरखु सो आहे, जो सचु सुञाणे कीनकी
पाणु पंहिंजो पाण में वेठो विञाए,
समुझ्र रे सामी चए, धिका नितु खाए,
झ्राती कीन पाए, घिड़ी पंहिंजे घर में.

सामी साहब इस श्लोक में मूर्ख (अज्ञानी) मनुष्य का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य 'सत्य' (परमेश्वर) को नहीं पहचानता, वह मूर्ख है। अहंभाव के कारण वह अपने अंदर स्थित परमात्मा को पहचान नहीं सकता। अपने आप में ही वह उस सत्य स्वरूप को गँवा बैठा है। वह भ्रम में पड़कर इधर-उधर भटकते हुए ठोकरें खा रहा है। ईश्वर की तलाश में बाहर भटक रहा है किन्तु अपने ही मन में झाँक कर नहीं देखता, जहाँ ईश्वर/परमात्मा बैठा हुआ है।

सामी साहब ने अपने काव्य में दो प्रकार के जीवों/मनुष्यों का वर्णन किया है। एक वे मनुष्य जो ज्ञानी हैं, समझदार हैं, विवेकवान हैं या जिन्हें अंदर की बूझ है। दूसरे वे, जो अज्ञानी नासमझ या मूर्ख हैं। मराठी संत समर्थ रामदासजी ने भी मूर्खों के लक्षण विस्तार से गिनाये हैं। यहाँ सामी जी मूर्ख मनुष्य का एक प्रधान लक्षण बताते हुए कहते हैं कि वह 'सत्य' (परमात्मा) को पहचानने में असमर्थ होता है। संसार के विषय-सुखों में लिप्त, माया के मोह जाल में फँसा हुआ, राम-नाम के स्मरण से सदा दूर रहने वाला मूर्ख मनुष्य भला सत्य को, परम-सत्य को कैसे जान सकता है? जिसने कभी सत्संगति नहीं की और न ही विवेक धारण किया तथा न ही अपने मन में झाँक कर अंतरात्मा को जानने का प्रयत्न किया, ऐसे मनुष्य को 'सत्य' की प्राप्ति कैसे हो सकती है? वह मूर्ख तो अपने स्वरूप को (अहं ब्रह्मास्मि।) भुला बैठा है और अपने शरीर को ही सत्य मानने लगा है। ऐसे मनुष्य को दु:ख ही दु:ख भोगने पड़ते हैं। हरि-स्मरण से विमुख रहने वाले अज्ञानी जीव की यही नियति है। जिस अज्ञानी ने भगवान से अलग होते ही शरीर को अपना घर मान लिया है, माया के वश होकर अपने 'सच्चिदानंद' स्वरूप को ही भुला दिया है, उसे तो असहनीय दु:ख भोगने ही पड़ते हैं। उसे अनेक जन्मों में भी भटकना पड़ता है। इसलिए अपने कल्याण के लिए, जीवनोद्धार के लिए अंतर्यामी परमात्मा को पहचान कर उसका स्मरण करना चाहिए।

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों मालिक घट माँहिं।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढन जाहिं।।

■

रही कीन सधे, हीअ दासी दरिसन रे,
तिखो तीरु इश्क जो, वियो लुअं मों लंघे,
सामी चितु चातरिक जां, सुंवाती बूंद मंगे,
अचे रंगि रंगे, दरिसनु ॾेई पांहिंजो.

परमेश्वर से अनन्य प्रेम करने वाली स्त्री के मन की दशा का वर्णन उसी के शब्दों में सुनिए- ''हे प्रभु! तुम्हारी यह दासी तुम्हारे दर्शन बिना अब रह नहीं सकती। तुम्हारे प्रेम का ऐसा तीक्षा (पैना) तीर लगा है, जो मेरे रोम-रोम को छेद कर पार हो गया है। मेरा प्यासा हृदय चातक पंछी की तरह स्वाति नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद के लिए तरस रहा है। हे प्रिय! तुम जल्दी आओ और दर्शन देकर मुझे अपने प्रेम के रंग में रंग दो।

परमेश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम भक्ति है। यह भक्ति 'परम प्रेम-रूपा' है, 'अमृत स्वरूपा' है। अर्थात् प्रेम भाव में उत्कटता और मधुरता समायी हुई है। भक्ति का प्रमुख भाव प्रेम ही है। प्रेम रहित भक्ति नहीं हो सकती। जैसे गुड़ में उसकी मिठास समायी हुई होती है, दोनों एकरूप होते हैं, उसी प्रकार भक्ति में प्रेम-भाव समाया हुआ होता है। लौकिक स्तर पर भी यह प्रेम एक दूसरे को बाँधे रखने वाला होता है। प्रेम बिना जीवन शुष्क है, सूना है। अलौकिक स्तर पर भी यह प्रेम भाव अपना विशेष महत्व रखता है। कोई भी मनुष्य या भक्त किसी भी प्रकार से जब परमेश्वर से अपना संबंध स्थापित करता है, तब सबसे पहले अपने मन में प्रेम भाव ही लाता है। भक्ति के जो नौ प्रकार गिनाये गये हैं, उन में माधुर्य भाव वाली भक्ति भी प्रेम-भाव पर ही टिकी हुई रहती है। इसमें भक्त स्वयं को स्त्री कल्पित करते हुए और परमेश्वर को अपना प्रिय पति मानकर भक्ति करता है। इसे 'मधुरा भक्ति' कहा गया है। इस प्रकार 'कांता-आसक्ति' अथवा पति-पत्नी के प्रेम भाव को ईश्वर की अनुभूति करने के लिए आवश्यक माना गया है। भारतीय भाषाओं के असंख्य कवियों ने माधुर्य भाव की कविता लिखकर साहित्य-संसार को मधुर बना दिया है। कबीर और मीराबाई की कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मीराबाई के काव्य में प्रभु के प्रेम दर्द दिखाई देता है। श्रीकृष्ण के दर्शन की प्यासी मीराबाई कहती है,

पिय रो पंथ निहारतां, सब रैण विहाणी हो।
ज्यूं चातक घन कूँ रटै, मछरी ज्यूं पाणी हो।
मीरा व्याकुल विरहणी, सुध-बुध विसराणी हो।।

■

रुअनि ज़ारूं ज़ार, फटिया दरद फिराक जा,
सिसी लाहे धड़ खों, कियाऊँ धारूं धार,
हार जीत दुख सुख जी, रखनि कान संभार,
रहनि मंझि खुमार, सामी सुपेरियुति जे.

प्रियतम परमेश्वर के विरह से व्याकुल भक्तजन फूट-फूट कर रो रहे हैं। उन्होंने असह्य होकर अपना सिर काट कर धड़ से अलग कर लिया है। उन्माद की अवस्था में होने के कारण इन्हें सुख-दुख या हार-जीत की सुधि नहीं है। वे मात्र परमेश्वर के प्रेम के खुमार (नशे) में रहते हैं।

प्रेम आत्मा का रूप है। परमात्मा से प्रेम करना ही सच्चा प्रेम है। यह प्रेम मनुष्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है। प्रेम जैसी आनंदमय वस्तु इस संसार में अन्य कोई नहीं है। प्रेम जगत् का कारण माना गया है क्योंकि परमेश्वर स्वयं ही प्रेम है। सृष्टि के कण-कण में प्रेमतत्त्व विद्यमान है। यह सारा संसार प्रेम का ही उल्लास और विकास है। प्रेम का आधार लेकर परमात्मा के मंगलमय आँगन में प्रवेश कर प्रेम का प्रभाव देखा जा सकता है। परमात्मा से प्रेम करने वाला अपने सत्य स्वरूप को पहचान लेता है, जीवन के सत्य को जान लेता है और आत्मा के दिव्य-दर्शन भी कर लेता है। परमेश्वर से माधुर्य भाव वाली भक्ति करने वाला तो रात-दिन प्रेम में डूबा रहता है। कबीर के शब्दे में,

प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ प्रहर भीना रहे, प्रेम कहावै सोय।।

सच्चे भक्त ईश्वर के दर्शन के प्यासे होते हैं। परमात्मा के विरह की पीड़ा उन्हें रुलाती रहती है। संत मीराबाई, गोपियाँ और संत राबिया तो साक्षात् विरह की मूर्तियाँ हैं। ये सभी प्रभु के विरह में रोती रहती हैं। उन्हें नींद नहीं आती। हृदय गहरी विरह-वेदना से पीड़ित है। प्रभु प्रेम के उन्माद में वे अपनी सुधि खो चुकी हैं। विरहीजनों की दशा चातक पंछी और मछली जैसी हो जाती है, जिन का जीवन पानी है। प्रेमी भक्तों का जीवन भी प्रियतम परमेश्वर होता है। उनके प्राणों का आधार परमेश्वर ही है। प्रभु के प्रेम के खुमार में सदा मगन रहने वाले सच्चे प्रेमियों का वर्णन सामी साहब ने किया है। मीराबाई के शब्दों में,

प्यारे, दरसण दीज्यो आय, थां बिन रह्यो न जाय।।
जल बिन कमल, चंद बिन रजनी, थां बिन जीवण जाय।।
आकुल व्याकुल रैण बिहावूं विरह, कलेजो खाय।।

■

वञे कीन कही, महिमा साधूअ संग जी,
मन, बुधि, वाणीअ खों परे, ऊन्हीं अणमई,
साख ड॒ियनि सामी चए, आशिक अनभई,
पंहिंजीअ मंझि पई, सदा माणिनि सांति सुखु.

सामी साहब कहते हैं कि साधु-संत की संगति की महिमा मुझसे कहीं नहीं जाती। सत्संग की महिमा इतनी गहन, अथाह और अमान है कि मेरा मनु, बुद्धि एवं वाणी भी वर्णन करने में असमर्थ है। अनुभव करने वाले ईश्वर प्रेमी भी इसी तथ्य के साक्षी हैं। ऐसे ही सच्चे प्रेमी जन संतों की संगति का लाभ प्राप्त कर अपने ही भीतर आत्मा के दर्शन कर सदा ही शांति एवं अलौकिक सुख भोगते हैं।

अध्यात्म अथवा परमार्थ के क्षेत्र में 'सत्संग'/संतों की संगति महत्वपूर्ण मानी गयी है। साधु-संत का सहवास प्राप्त होना भाग्य का लक्षण माना गया है। श्रीमद् भागवत में बताया गया है कि सत्संग द्वारा अनेक जीवों का उद्धार हो गया है। संतों के संग से सुग्रीव, जटायु, जांबुवंत, गजेंद्र, कुब्जा और गोकुल की गोपियों का उद्धार हो गया। क्योंकि संत साख्यात् परमेश्वर का रूप होते हैं। वस्तुतः सत्संगति की महिमा का वर्णन करने के लिए शब्द पंगु प्रतीत होने लगते हैं।

महाराष्ट्र के एक महान संत के शब्दों में, ''सच्चे संत परमेश्वर के नाम की महिमा का गान करते हैं। समाज में नाम-स्मरण का प्रचार करना मानो समाज पर संतों द्वारा किया हुआ उपकार है। हजारों-लाखों को भगवान के नाम स्मरण की और उन्मुख करना उनका महत् कार्य है। संत जन सूर्य की भाँति समाज पर उपकार करते हैं। परमेश्वर प्राप्ति का सही मार्ग बताने वाले संत निस्स्वार्थी एवं परोपकारी ही होते हैं। सामान्यजनों को 'तुम विषयों के नहीं अपितु भगवान के हो। कहकर प्रतीति कराते हैं कि ''विषयों के प्रति अपनी आसक्ति कम करने का प्रयत्न करो।'' संत निर्भय होते हैं। उनकी मधुर वाणी का प्रभाव लाखों लोगों पर देखा जा सकता है। संतों में बहुत अधिक सामर्थ्य होता है। सत्संगति से मन में सद्विचार निर्माण होते हैं। संत समाज का हित/कल्याण करने वाले होते हैं। स्वयं महान संतों ने भी परमेश्वर से संतों की संगति ही माँगी है। अर्थात् वे मुक्ति/मोक्ष की अपेक्षा सत्संगति को ही अधिक महत्व देते हैं। संत तुकाराम महाराज के शब्दों में '**न लगे मुक्ति आणि धनसंपदा। सतसंग देई सदा ।।**' स्वामी स्वरूपानंद ने संतों को 'आनंद की खान' कहा है । संत ज्ञानेश्वर कहते हैं, ''**चंद्रमें जे अलांछन। मार्तंड ते तापहीन। ते सर्वाही सदा सज्जन। सोयरे हेतु।।**''

सतसंगति को फल यही, संसय रहहि न लेस।
हुवै असथिर शुचि सरल चित, पावै पुनि न कलेस।।

■

वॾी वॾाई सामी ॼाणु भॻति जी,
नीच ऊच थिया केतिरा, करे कमाई,
ढेढ चमार जुलाहा, पेञारा नाई,
जनीं लिंव लाई, से सभेई सुधिरिया.

भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं, ''हे मनुष्य ! तुम यह जान लो कि भक्ति की बड़ी महिमा है। परमेश्वर की भक्ति करने से ही अनेक निम्न जाति के लोग उच्च बन गये। यह कमाई, यह फल उन्हें भक्ति द्वारा ही मिला है। ढ़ेंढ/डोम, जुलाहा, धुनियाँ और नाई जाति के लोगों ने भी प्रभु से बहुत प्रेम किया, भक्ति की और वे सब के सब सुधर गये, उनका जीवन सफल हो गया तथा उन्हें मुक्ति मिली।

आत्म-प्राप्ति या परमेश्वर को पाने के लिए भक्ति एक महत्वपूर्ण साधन है। परमेश्वर से अनन्य प्रेम ही भक्ति है। भगवान का स्मरण, राम-नाम जपना भक्ति है। नाम-रूपात्मक उपासना' भक्ति-मार्ग' के नाम से पहचानी गयी और फिर यह 'भागवत धर्म' के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। भक्ति करने का अधिकार सबको है। अर्थात् किसी भी वर्ण या जाति का मनुष्य भक्ति कर सकता है। भारत के महान संतों ने भक्ति को जनसामान्य तक पहुँचाने का महत् कार्य किया है। बड़े-बड़े संतों से लेकर समाज के निम्न स्तर के लोगों ने भक्ति मार्ग को अपनाया है। एकनिष्ठ भक्त अपना जीवन सफल कर गये हैं। भक्ति हृदय का सौदा है, जहाँ स्वार्थ का कोई स्थान नहीं हैं। समर्पण का भाव ही भक्ति के लिए अनिवार्य तत्त्व है। भक्ति-रस, भक्ति का आलौकिक आनंद केवल अनन्य/एकनिष्ठ भक्त ही प्राप्त कर सकता है।

सामी साहब ने भक्ति की महिमा पर बहुत श्लोक रचे हैं। उपर्युक्त श्लोक में भी भक्ति की महिमा और उसकी एक विशेषता वर्णन है। मोक्ष/मुक्ति प्रदान करने वाली भक्ति संसार का कोई भी मनुष्य कर सकता है। चाहे कोई राजा हो रंक, उच्च वर्ण वाला हो या निम्न जाति का, छोटा-बड़ा, नर-नारी आदि सभी भक्ति करने के अधिकारी हैं। सामी साहब उदाहरण देते हैं कि नामदेव (दरजी), कबीर (जुलाहा), सेना (नाई), नरहरी (सुनार), तुकाराम (कुनबी), सावता (माली) और कान्होपात्रा (गणिका) आदि ने भक्ति करके अपना जीवन सफल कर दिया। भक्ति के क्षेत्र में जात-पात को कोई स्थान नहीं ह। आवश्यक है प्रभु के प्रति प्रेम!

सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
साँस साँस सुमिरन करनं, एक दिन मिलसी आय॥

■

विरली माउ ॼणे, का प्रेमी पुटु गरभ मों,
सामी सुपेरियुनि जी, जंहिंखे भॻति वणे,
ॼाण विञाए पांहिंजी, सभ जो दासु बणे,
लिखिया कीन ॻणे, ॾिसी अलेखु अखिनि सां.

सामी साहब सच्चे प्रेमी भक्त का वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार में दुर्लभ कोई माता होगी, जिसने अपने गर्भ से प्रेमी पुत्र को जन्म दिया होगा। एक ऐसा सुपुत्र, जिसे प्रियतम परमेश्वर की भक्ति भाती है। जो अपनी संज्ञा भुला कर सब का सेवक बन जाता है। ऐसा ईश्वर भक्त अपनी आँखों से अलख (अलक्ष्य, ईश्वर) को देखकर/उसके दर्शन कर अपने प्रारब्ध का लेखा नहीं लगाता।

हर प्राणी जन्म लेता है। पशु हो या मनुष्य, माँ के गर्भ से ही जन्मता है। माता जननी है, जन्म देने वाली है। भिन्न रंग और रूप वाले, स्वभाव और वृत्ति वाले बच्चे माता की कोख से ही पैदा होते हैं। न सब माताएँ एक-से स्वभाव वाली होती हैं और न ही उनकी संतान एक जैसी होती है। गोरे और काले, लंबे और ठिगने, स्वस्थ और रोगी, सदाचारी और अनाचारी, अच्छे और बुरे, सुष्ठ और दुष्ट संतान माता ही जन्मती है। माता ही सुपुत्र या कुपुत्र को जन्म देती है। इस प्रकार संतान की दृष्टि से सारा संसार विचित्र प्रकार की विविधता से भरा पड़ा है । वेचित्र्य इस बात में है कि यह वैविध्य ही मनुष्य जीवन में सुख दु:ख का कारण भी बना हुआ है। मनुष्य अपना स्वभाव बदलने में सक्षम नहीं होता । और न ही वह अपने 'अहं' का त्याग कर सकता है।

इस दुखमय संसार में अपवाद स्वरूप में ऐसी भाग्यवान माताएँ भी जन्म लिये हुए होती हैं, जो सुपुत्रों को जन्म देती हैं। उन सुपुत्रों में से कुछ पुत्र-रत्न प्रभु के प्यारे भक्त बन जाते हैं और सारे संसार में एक आदर्श स्थापित करते हैं। भक्त के रूप में वे अमर हो जाते हैं। सामी साहब ने ऐसी पुण्यवान और भाग्यशाली माताओं को सन्मानित करते हुए कहा है कि ऐसी दुर्लभ माताएँ ही सच्चे प्रेमी भक्त बालकों को जन्म देती हैं। ऐसे बालकों ने परमेश्वर की भक्ति कर अमरता प्राप्त की है। इतिहास या पुराणों में ऐसे बालक भक्त उल्लेखनीय रहे हैं। भक्त प्रह्लाद और ध्रुव की माताएँ धन्य हैं, जिन्होंने ऐसे रत्नों को जन्म दिया, जिनके नाम आकाश में भी चमक रहे हैं।

■

विरलो विलोड़े, को मखणु कढे मन मों,
करे मांधाणी मन जी, थिरता थंभ खोड़े,
सेली पाए सच जी, जुॻति सां जोड़े,
ॾिसे मुंहु मोड़े, पांहिंजो अखिएं पाण खे.

अपना मन-मंथन करने वाले दुर्लभ व्यक्ति के विषय में एक रूपक का प्रयोग कर सामीजी कहते हैं कि संसार में कोई एक व्यक्ति दिखाई देगा, जो अपने मन को मथ कर उसमें से माखन निकालता है। अपवाद रूप में दिखाई देने वाला ऐसा विवेकवान व्यक्ति प्रेम रूपी मथनी लेकर, (चित्त की) स्थिरता रूपी खंभा गाड़कर मथने का काम करता है। वह सत्य की सेली (टोपी) पहन कर युक्ति से मंथन करता है। तब वह अपने ही भीतर झाँक कर अपने नेत्रों से स्वयं को (अंतरात्मा को) देख लेता है। (यहाँ अंतरात्मा/ईश्वर माखन है। मन मथनी है। मन की स्थिरता खंभा है, सत्य/सत्यता टोपी है, साधना/भक्ति युक्ति है।)

मनुष्य के रूप में जन्म लेकर आने वाला हर व्यक्ति सुख-संतोष और आनंद प्राप्त करना चाहता है। माया-जाल में फंसा हुआ जीव उधर भटकता रहता है सुख की तलाश में । इस तलाश में परमेश्वर की कृपा, परमेश्वर के दर्शन को वह अधिक महत्व देता है। अज्ञानी जीव यह तथ्य भुला देता है कि मैं स्वयं ही परमात्मा का अंश हूँ और परमात्मा मेरे अंदर है, मन में है। अत: वह परमेश्वर को बाहर ही ढूँढने का प्रयत्न करता रहता है। अनेक मार्गों का अवलंब कर परमेश्वर को पाने की इच्छा उसके मन में कम अधिक प्रमाण में रहती ही है। परंतु उसका ध्यान अपने कलुषित, मलीन और विकार ग्रस्त मन की ओर नहीं जाता। अगर जाता भी है, तो वह अपने मन में स्थित षड् रिपुओं से लड़ नहीं सकता। काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों को अपने मन से निकाल कर मन निर्मल बना नहीं सकता। अविद्या के आवरण के कारण वह अपने मन में झाँकने का, मन-मंथन करके का आत्म स्वरूप को पहचाने का प्रयत्न नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप वह परमेश्वर के दर्शन एवं यथार्थ सुख-संतोष तथा आनंद से वंचित रह जाता है।

सामी साहब मानते हैं कि ईश्वर दर्शन या मुक्ति भी प्रयत्न साध्य है। वह अपने आप ही मिलने वाली वस्तु नहीं है। इसके लिए जतन करने पड़ते हैं। सर्वप्रथम सतगुरु के मार्गदर्शन में किसी भक्ति-मार्ग का अवलंब करने के पूर्व मन मंथन करना जरूरी है । मन विकार रहित होने के बाद ही परमेश्वर रूपी नवनीत की प्राप्ति हो सकेगी। बिना इस क्रिया-प्रक्रिया के प्रभु के दर्शन नहीं हो सकेंगे।

■

विसनि विञायो, पिर्‌तखि पूरन आतमा,
देही ज॒ाणी पाण खे, फाहीअ फासायो,
विरले कंहिं गुरमुख खे, अनभइ में आयो
सामी समायो, जल पपोटो जल में

सामीजी कहते हैं कि विषयों ने, सांसारिक सुखों की कामना ने जीव (मनुष्य) को परमात्मा से विमुख कर दिया है। माया/अविद्या के कारण मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप को पहचान नहीं पाता। परिणामतः वह 'देह'/शरीर ही मानते हुए स्वयं को सांसारिक बंधनों में बाँध लिया है। अपवाद रूप में ही विरले किसी मनुष्य ने इस बात को समझा होगा। अर्थात् ऐसा गुरुमुख व्यक्ति जो गुरु के उपदेशनुसार आचरण करने वाला है। उसको प्रतीति हुई है कि जैसे पानी का बुदबुदा ऊपर उठ कर फिर पानी में ही समा जाता है उसी प्रकार परमात्मा का यह अंश (जीवात्मा/मनुष्य) अंत में परमात्मा से ही मिल कर एक हो जाता है।

देह अर्थात् शरीर आत्मा का आश्रय है। हमारी आत्मा देह में स्थित है। देह को 'अध्यात्म' भी कहा गया है। मनुष्य देह का अपना भी विशेष महत्व है। इस देह के कारण मनुष्य को अंतरात्मा के दर्शन हो सकते हैं। परन्तु देह को ही सब कुछ मानना और देह का अभिमान करना उचित नहीं है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि जब से जीव/मनुष्य भगवान से अलग हुआ है, उसने शरीर को अपना घर मान लिया है। माया के वश होकर उसने अपने 'सच्चिदानंद' स्वरूप को भुला दिया है। इसी भ्रम के कारण उसे दारुण दुःख भोगने पड़ते हैं। विषयों में लिए हो जाने पर उसे परमात्मा का विस्मरण हो गया है। वह विषय-भोग रूपी मृगतृष्णा के पीछे दौड़ रहा है। सुख रूपी जल पाने के लिए। किन्तु उसे न सच्चा सुख-संतोष मिलता है और न ही श्री हरि के दर्शन! वस्तुतः उसने अपने उस शुद्ध अविनाशी, विकारहित सुखस्वरूप को ही छोड़ दिया है। उसने अज्ञानवश स्वयं ही अपनी कर्मरूपी रस्सी मजबूत कर ली है और अपने ही हाथों से मजबूत गाँठ लगा ली है अविद्या की। वह अपने ही कर्मजाल में फँस गया है। उससे छुटकारा पाने का एक ही मार्ग है सतगुरु की कृपा से अविद्या की गाँठ खोलना और श्रीहरि का, भगवान का नाम-स्मरण करना। अनन्य भाव से भगवान को भजना। सामी साहब भी यही बात समझाते हुए कहते हैं कि विरला कोई गुरुमुख जन होगा, जिसने यह बात समझ कर विषयों से अपना पिंड छुड़ाकर अपने स्वरूप से एकरूपता स्थापित कर परम आनंद की प्राप्ति की होगी। ■

वेद पुरान पढ़ी, पंडित थियड़ा केतिरा
बिना ग्यान गुरूअ जे, विद्या अविद्या मंझि अड़ी,
विरले कंहिं गुरमुख, ड॒िठो, वचन मांझि वड़ी,
तंहिंखे हथि चढ़ी, सामी लख सरूप जी.

सतगुरु के ज्ञान का महत्व समझाते हुए सामीजी कहते हैं कि इस संसार में कितने ही लोग वेद और पुराण ग्रंथ पढ़कर पंडित हो गये हैं। किन्तु ऐसे लोग गुरु के ज्ञान के अभाव में अविज्ञा/अज्ञान में ही फँस गये हैं। अर्थात् वे आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सके। संसार में ऐसा विरला गुरुमुखजन होगा, जिसने अपने सतगुरु के वचन/उपदेश का पालन कर अंतर्ज्ञान प्राप्त किया है और अंतर्यानी भगवान को देखा है।

व्यावहारिक दृष्टि से किसी वस्तु या विषय को मन और बुद्धि द्वारा समझना कि 'यह वस्तु यह है' ज्ञान है। इसी ज्ञान को पाने के लिए सारे संसार में होड़ लगी हुई है। ज्ञान का और एक प्रकार है। 'आध्यात्मिक ज्ञान' । यह अपने स्वरूप का ज्ञान है, इस आत्मज्ञान भी कहा जाता है। ज्ञान के दो अन्य प्रकार भी गिनाये गये हैं- परोक्षज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान। सत्संगति से अथवा सुष्ठु शास्त्र सुनने से ब्रह्म/परमेश्वर का संशय रहित ज्ञान होना 'परोक्ष ज्ञान' है। 'यह सब ब्रह्म है' का बोध परोक्ष ज्ञान है। आत्मा का साक्षात् ब्रह्मरूप से संशय रहित ज्ञान 'अपरोक्ष' ज्ञान' है। इसमें यह आत्मज्ञान होता है कि 'मैं ही सच्चिदानंदरूप ब्रह्म हूँ।' आत्मज्ञान शुद्ध ज्ञान रूप होने के कारण वेदों में इसे 'स्वयंविद' कहा गया है।

महाकवि सामी जी का कहना है कि वेद-पुराण या अन्य नीतिशास्त्र आदि पढ़ने से मनुष्य पंडित तो बन सकते हैं किन्तु इससे वे अंतर्ज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी नहीं बन सकते। शुद्ध स्वस्वरूप का ज्ञान होना अनिवार्य है। जब तक यह ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक जीवन अविद्या के अंधकार में भटकता ही रहेगा। आत्मज्ञान के अभाव में उसके साजुज्य मुक्ति भी नहीं मिल सकती । यह आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए जीव को गुरु की, मोक्ष-गुरु, सतगुरु की नितांत आवश्यकता है। वही उसका मार्गदर्शक बन कर उसे सत्यमार्ग दिखाता है। सतगुरु के ज्ञान/बोध द्वारा ही आत्मज्ञान हो सकता है। अर्थात् मात्र ग्रंथों का पठन पर्याप्त नहीं है।

पढ़ पढ़ के ज्ञानी भये, मिट्यो नहीं तन ताप।
राम नाम तोता रटें, कटे न बंधन पाप।।

■

वेदनि जा महावाक, सुतह लखाइन समता,
समुझी थिया सामी चए, महबती मुश्ताक,
चढ़िया चेतन चिट ते, सटे सभि संग साक,
परचिया रहनि पाक, पाणु विञाए पाण में.

अपने काव्य द्वारा वेदों की व्याख्या करने वाले महाकवि सामी कहते हैं कि वेदों के 'महावाक्य' स्वयं ही समता दिखाते हैं। यह बात समझ कर वे जन प्रेम से परिपूर्ण हो गये, जिन के हृदय में प्रभु के दर्शन करने की अत्यंत इच्छा थी। ऐसे प्रेमीजन संसार के सभी संबंध/रिश्तेदारी तोड़कर विश्व के आत्म-चैतन्य से व्याप्त आकाश पर चढ़ गये, चिदाकाश से एकरूप हो गये। उन्होंने अपने अंदर ही झाँक कर परमात्मा को देख लिया और फिर शुद्ध एवं पवित्र होकर प्रियतम परमात्मा से मिलकर संतोष और आनंद का अनुभव कर लिया।

जिस वाक्य में जीव और ब्रह्म की एकता बतायी गयी है, उसे '**महावाक्य**' कहते हैं अद्वैत वेदांत उपनिषदों के कुछ वाक्यों को 'महावाक्य' की संज्ञान दी गयी है। इन महावाक्यों में निहित अर्थ समझे बिना वेदांत का बोध नहीं हो सकता। जीव-ब्रह्म की एकता या समता का ज्ञान/बोध होने के लिए चार वेदों के चार महावाक्य इस प्रकार हैं-

(1) ऋग्वेद में - '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' अर्थात् आत्मज्ञान, सर्वोच्च ज्ञान।
(2) यजर्वेद में - '**अहं ब्रह्मास्मि**' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ।
(3) सामवेद में - '**तत्वमसि**' अर्थात् 'वह (ब्रह्म) तुम ही हो।
(4) अथर्ववेद में -'**अयात्मा ब्रह्म**' अर्थात् वह (तुम्हारी) आत्मा ब्रह्म है।

इन महावाक्यों में इंद्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाले जीव और विश्व के हर स्थान पर उपस्थित ईश्वर, हृदय में निवास करने वाले ईश्वर एवं सर्वव्यापक/सर्वेश्वर की समता बतायी गयी है।

वेदों के इन महावाक्यों में अध्यात्म और परमार्थ के उपदेश का सार अवश्य आ गया है किन्तु सामी साहब कहते हैं कि महावाक्यों का मात्र जप/जाप करने से ही अविद्या/अज्ञान का अंधकार दूर नहीं हो सकेगा। महावाक्यों में निहित अर्थ की साक्षात् अनुभूति या ज्ञान होना भी आत्मकल्याण के अत्यंत आवश्यक है। इन महावाक्यों की सफलता साधक के एकता/समता या समाधि के अनुभव प्राप्त होने में है। 'ब्रह्म मैं ही हूँ अथवा मैं ही वह ब्रह्म हूँ।' का स्वरूप अनुभव होना ही समाधि, समता या एकता है।

■

वेदनि जो वाखाणु सरोतिनि कियो साख्यातु रे,
नेष्टी वेद वीचार रे, तारियो पंहिंजो पाणु,
सरोती नेष्टी ग्यानवानु को, सभिनी अंगनि साणु,
कोटनि जो कल्याणु, तंहिं सामी कयो शक्ति सां.

वेदों की महिमा का वर्णन करते हुए सामीजी कहते हैं कि साक्षात् श्रोत्रियजनों ने अर्थात् वेद-वेदांग के ज्ञानी पुरुषों ने भी वेदों की प्रशंसा की है। श्रुतियों में निष्ठा रखने वाले साधकों ने तो वेदों का चिंतन-मनन कर स्वयं को भावसागर को पार करवा लिया। श्रुति ग्रंथों में (वेद उपनिषदों में) निष्ठा रकने वाले ज्ञानी पुरुषों ने सभी अंगों के साथ उस शक्ति/ सामर्थ्य से करोड़ों लोगों का कल्याण कर दिया।

आध्यात्मिक या धार्मिक विषय का ठीक ज्ञान वेद है। 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है ज्ञान या देखना । ऋषियों ने वेद देखे अर्थात् उनको वेदों का साक्षात्कार हुआ, इसलिए इन्हें 'वेद' कहा जाता है। इन ऋषियों को 'वेद-द्रष्टा ऋषि' कहा जाता है। यह भी कहा गया है सृष्टि के पहले परमेश्वर ने वेद निर्माण किये। इसलिए वेद अनादि हैं। वैदिक मानते हैं कि वेद परमेश्वर का नि:श्वास हैं। वेदों को 'शब्द ब्रह्म' भी कहा गया है। वेदों में परमेश्वर के सच्चिदानंद स्वरूप का वर्णन है। परमेश्वर का स्वरूप मूल रूप में ज्ञान है- 'ज्ञानं ब्रह्म'। ज्ञान अर्थात् ब्रह्म। परमेश्वर की इससे बड़ी परिभाषा संसार में अन्य किसी ने नहीं की है। परमेश्वर की उपासना ही ज्ञान की उपासना है। वेद भारतीय अध्यात्म के मूल ग्रंथ हैं। वेद चार हैं। यथा 1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद और 4. अथर्ववेद । इनके भी 4-4 भाग हैं। इनको 1. संहिता, 2. ब्राह्मण, 3. अरण्यक और 4. उपनिषद कहा जाता है। वेद संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद्- इन चारों के साहित्य को 'श्रुति' कहा गया है। इन सभी ग्रंथों का अध्ययन करने वाले ब्राह्मण/सत्पुरुष को 'श्रोत्रिय' वेदवेत्ता, वेद-ज्ञानी कहा जाता है। वेद धर्म का मूल होने कारण 'वेद-प्रमाण' का बड़ा महत्व है। वेद हजारों वर्ष पहले सप्त-सिंधु के किनारे लिखे गये । वेद लौकिक और अलौकिक ज्ञान के साधन हैं। वेदों के ज्ञान एवं अध्ययन से लोक-कल्याण हुआ है।

सामी साहब ने इन्हीं वेदों की महिमा उपर्युक्त श्लोक में वर्णित की है। वेदों की प्रशंसा श्रोत्रियों ने भी की है, जिन्हें वेदों का साक्षात्कार हुआ है। वेदों में विश्वास, निष्ठा एवं श्रद्धा रखने वालों का जीवन सफल हो गया है। वे भवसागर तैर गये हैं।

■

सुजण जी सोभिया, चई वञे न वाच सां,
सूरिज, चंदिर, चिराख लख, लजामान थिया,
सामी मोहिया सूरिमा, जनि दीदार किया,
लंघे पारि पिया, अविद्या जो आड़ाह खों.

परमेश्वर की सुंदरता का वर्णन करते हुए महाकवि सामी कहते हैं कि परमेश्वर की सुंदरता मुख से, वाणी से वर्णित नहीं की जा सकती। परमेश्वर इतने सुंदर हैं कि इनके सामने सूर्य, चंद्र और लाखों दीपक भी लज्जित हो जाते हैं अर्थात् वे सब उस सुंदरता की बराबरी नहीं कर सकते। प्रभु के ऐसे दिव्य सौंदर्य पर मोहित होकर कुछ विरले वीर ही उनके दर्शन कर पाते हैं। ऐसे ज्ञानी पुरुष अविद्या के गहन सागर को पार कर सके हैं।

सृष्टि के निर्माता परमेश्वर अति सुंदर हैं, इसी कारण सब को आकर्षित करते हैं, मोहित करते हैं। परमेश्वर के दिव्य सौंदर्य के सामने सूर्य, चंद्र आदि का प्रकाश फीका पड़ जाता है। अर्थात् वे इन सभी से अधिक सुंदर हैं। परमेश्वर बहुत सुंदर हैं इसलिए सभी मनुष्यों के आकर्षण एवं प्रेम के केंद्र बने हुए हैं। देवता भी प्रभु से प्रेम करते हैं। मनुष्य अथवा देवताओं की वाणी में उतना सामर्थ्य नहीं है, जो भगवान के सौंदर्य का यथार्थ वर्णन कर सकें। इस दिव्य सौंदर्य की एक झलक पाने के लिए मनुष्य लालायित रहते हैं। सभी मनुष्य प्रभु के दर्शन करना चाहते हैं। दर्शन की इस प्यास के कारण सच्चे प्रेमी तड़पते रहते हैं। परंतु प्रभु के दर्शन किसी सच्चे, प्रेमी वीर और श्रद्धावान मनुष्य को ही हो सकते हैं।

ब्रह्म/परमेश्वर के दो रूप माने गये हैं। दोनों की महिमा का वर्णन किया गया है। सगुण परमेश्वर की महिमा और सुंदरता का वर्णन करने के लिए भारतीय साहित्य में लाखों कविताएँ लिखी गयी हैं। हजारों कवियों ने ईश्वर का वर्णन किया है। किन्तु परमेश्वर के रूप और स्वरूप का यथार्थ वर्णन कोई नहीं कर सका है। भक्त-कवियों ने और संत-कवियों ने भी भगवान के सुंदर रूप का वर्णन किया है। सूरदास ने श्रीकृष्ण का और संत तुलसीदास ने रामचंद्र का अतीव सुंदर वर्णन किया है। अनेक भक्त कवि भी प्रभु के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए दिखाई देते हैं। महाराष्ट्र के संत तुकाराम महाराज ने अपने आराध्य देव भगवान विट्ठल के रूप का, मोहिनी मूर्ति का यह वर्णन किया है,

सुंदर ते ध्यान उभे विटेवरी। कर कटावरी ठेवूनिया।।
तुलसीचे हार गळा कासे पीतांबर। आवडे निरंतर तेचि रूप।।

■

सज॒ण सूर चया, वञनि न विछोड़े जा,
तुंहिंजीअ सिक अंदर में, छेक अनेक किया,
सामी चए चकोर जां, सुकी नेण रहिया,
कड॒ी करे दया, दरिसु ड॒ींदें दास खे.

विरह-दग्ध भक्त प्रियतम परमेश्वर से कह रहा है कि हे साजन! हे प्रीतम! तुम्हारे बिरह की पीड़ा अब मुझसे सही नहीं जाती। मर्मांतक पीड़ा का वर्णन में अपने मुँह से नहीं कर सकता। तुम्हारे प्रेम ने मेरे हृदय को विदीर्ण कर डाला है। मेरी आँखें रो-रो कर चकोर पंछी की आँखों जैसी सूख गयी हैं। तुम इस दास पर कब दया कर दर्शन दोंगे?

ईश्वर के प्रति असीम प्रेम ही भक्ति का मर्म है। परमेश्वर से प्रेम करना ही भक्ति है। अमृतस्वरूपा भक्ति में माधुर्य भाव की प्रधानता है। अर्थात् प्रेम-भाव माधुर्य भाव से भरा हुआ होता है। भक्त-जब परमेश्वर के साथ किसी भी प्रकार से संबंध जोड़ता है, तब उसकी अभिव्यक्ति माधुर्य-भाव से ही छलकती है। परमेश्वर को अपना पति या प्रियतम मानकर पत्नी या प्रियतमा की भावना से भक्ति करना 'मधुरा'/ 'माधुर्य-भाव' की भक्ति है। यह भक्ति परमेश्वर और भक्त के मधुर संबंध पर आश्रित है। इस में प्रेम, रूठना, मनाना, विरह का दर्द और मिलन का सुख आदि अनेक भाव समाये हुए हैं। भक्ति में भी प्रेम के दो भेद (विप्रलंभ शृंगार एवं संयोग शृंगार) होते हैं। गोपियाँ माधुर्य भाव वाली भक्ति की आदर्श हैं। श्रीकृष्ण से उनका नाता इसी प्रकार का था, इस कारण वे श्रीकृष्ण के विरह में विरह दुःख का अनुभव करती हैं। संत मीराबाई एवं राबिया की भक्ति भी इसी प्रकार की है। ये सब परमात्मा के प्रेम में, विरह में और दर्शन पाने की चाह में तड़पने वाली नारियाँ हैं।

श्रीकृष्ण के प्रेम में दीवानी होकर अपने घर का त्याग कर, विष का प्याला भी हँसते-हँसते होंठों से लगाने वाली एवं 'ए री, मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाणै कोय' कहने वाली मीराबाई की दशा 'घायल की गति घायल जाणै, जो कोई घायल होय' की भाँति है। 'सुली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विध होय' कहने वाली मीराबाई अथवा परमेश्वर के दर्शन के लिए तड़पने वाली राबिया तथा सामी साहब द्वारा वर्णित भक्त में कोई अंतर दिखाई नहीं देता। यह भक्त भी विरह का मारा हुआ है। प्रभु के दर्शन का प्यासा है। मीराबाई जैसा।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बेग मिलज्यो आय।'

■

सतिगुर रहमु कियो, तॾीं अखियूं खुली आयूं,
दरिसन पंहिंजे दोस जो सुतह सिधि थियो,
भारी भवसागर खों, लंघे पारि पियो,
बिना ॿोध ॿियो, सामी सुझे कीनकी.

सतगुरु की कृपा का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं कि मेरे सतगुरू ने मुझ पर दया/कृपा की तब मेरी आँखें खुल गयी अर्थात् मेरे मन का अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो गया और में सजग हो गया। सतगुरु की कृपा से ही मुझे अपने आप प्रीतम परमेश्वर के दर्शन हो गये। फलस्वरूप इस भंयकर भवसागर को पार कर सकना मेरे लिए आसान हो सका।

मनुष्य इस दृश्य जगत को अपने चर्म-चक्षुओं से देख सकता हैं। किन्तु इंद्रियातीत परब्रह्म/परमेश्वर के अनुभव करने-कराने वाला कोई विरला ही सत्पुरुष/महापुरुष होता है। सतगुरु आत्मस्वरूप का साक्षात् अनुभव करने वाले होते हैं। विश्व के अंतर्बाह्य व्याप्त परमेश्वर से एकरूपता स्थापित करने वाले सतगुरु ही होते हैं। भगवान का रूप होने वाले सतगुरु यदि अपने शिष्य पर कृपा करते हैं, तो वह शिष्य पूर्ण पद पर आसीन हो सकता है। माया का बंधन तत्त्वज्ञान द्वारा ही नष्ट हो सकता है, अन्य किसी कर्म आदि द्वारा नहीं। वेदांत के महावाक्यों से उत्पन्न जीव-ब्रह्म-एकता का अनुभव ही 'ज्ञान' है। यह ज्ञान ईश्वर-प्रसाद से सतगुरु की कृपा हो जाने पर अधिकारी शिष्य में महावाक्यों द्वारा 'शक्तिपात' से उत्पन्न होता है। अर्थात् ईश्वर की वह शक्ति शिष्य में भी होती है और उसे जाग्रत करने का कार्य सतगुरु द्वारा होता है। शक्ति के जाग्रत होने से प्राणवायु ऊर्ध्वगामी होता है और चित्त एवं प्राण दोनों का ही पूर्ण लय हो जाता है। इस कारण कुंडलिनी योग को 'महायोग' कहा जाता है। यह भी चित्तवृत्ति-निरोध रूप ही होता है और यह सतगुरु की कृपा से शीघ्र प्राप्त होता है। अत: शक्ति जाग्रत करने के लिए सतगुरु के पास जाना आवश्यक है।

सामी साहब भी यही तथ्य समझाने का प्रयत्न करते हैं कि सतगुरु की कृपा से ही मन की आँखें खुलती हैं और तभी हमारा चित्त/अंत:करण विकार-विहीन होकर निर्मल/पवित्र बन जाता है। फलस्वरूप आगे चलकर हम भवसागर पार कर सकने के अधिकारी बन सकते हैं।

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भाँडा तोड़ि करि, रहै निराला होय।।

■

सतिगुर वचनु उतो, वेद पुरान मथे करे,
विरले कंहिं गुरुमुख खे, हिरिदे मंझि खुतो,
कढियो तंहिं अंदर मों, अविद्या लोभ-कुतो,
सदाईं अछुतो, सामी रहे सुभाव में.

सतगुरु ने वेद-पुराण ग्रंथों का मंथन (चिंतन-मनन) कर एक वचन (वाक्य) कहा। वह वचन एक बाण की भाँति किसी गुरुमुख के हृदय में बिंध गया। उस वचन के प्रभाव के परिणामस्वरूप उस गुरुमुख ने अपने हृदय से अविद्या/अज्ञान रूपी कुत्ते (श्वान) को बाहर निकाल दिया। इसलिए अब वह सदा के लिए निर्मल स्वभाव वाला बन गया है।

'श्रीगुरु गीता' नामक संस्कृत ग्रंथ में कहा गया है कि गुरु आत्मा है, परमात्मा है। गुरु ईश्वर का अन्य रूप है। वह ब्रह्मरूप है। ब्रह्म सतगुरु के रूप में प्रकट होते हैं। अत: गुरु-भक्ति परमात्मा को प्राप्त करने का अंतिम साधन है। सतगुरु ही मनुष्य को परमात्मा से मिलाते हैं। वही अज्ञान मिटा सकते हैं। जीव/मनुष्य को अंदरवाली ईश्वरीय शक्ति जाग्रत करने के लिए सतगुरु के सान्निध्य में जाना आवश्यक है। 'शक्तिपात' करने की शिष्य में शक्ति जाग्रत करने की सामर्थ्य सतगुरु में ही होती है। सतगुरु ही शिष्य की परख कर उसमें योग्यता होने पर शक्तिपात-दीक्षा देते हैं। यह दीक्षा मिलते ही जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार गुरु-शक्ति के संबंध से शिष्य की कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होती है। परिणामत: दिव्य-ज्ञान प्राप्ति में बाधक पाप, चित्त की चंचलता, अज्ञान का आवरण आदि सभी दोषों का धीरे-धीरे नाश होने लगता है। सभी संप्रदायों में न्यूनाधिक शक्ति-संचार मंत्र-उपदेश द्वारा होता है। यही 'वचन' या उपदेश अथवा मंत्र अति महत्वपूर्ण है। इसी के जाप से चैतन्य-शक्ति जाग्रत होती है। यह शक्ति सतगुरु ही जाग्रत करने वाले होते हैं, इसलिए सतगुरु/गुरु को साक्षात् परब्रह्म कहा गया है।

गुरु नारायण रूप है, गुरु ज्ञान को घाट।
सतगुरु वचन प्रताप सों, मन के मिटे उचाट।।

सामी साहब भी सतगुरु एवं उनके वचन/उपदेश/दीक्षा-मंत्र का महत्व प्रतिपादित करते हैं, जो वेदादि ग्रंथों के उपदेश आदि के ऊपर है। सतगुरु ही अपने सद् शिष्य को श्रेष्ठ बना सकते हैं। स्वामी विवेकानंद जी के शब्दों में, 'गुरु-भक्ति आध्यात्मिक/आत्मिक विकास का आधार है। गुरु आत्म-साक्षात्कारी होते हैं। गुरु ही शिष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले होते हैं।'

■

सदाई वैरागु, रखनि संत अंदर में,
साफ कियाऊं दिलि खे, लाहे दुतिया दाग़ु,
जाग़ी अविद्या निंड मों, सामी थिया सुजागु,
सहजे खेलनि फागु, चढ़ी मेर महल में.

साधु-संतों के लक्षण बताते हुए सामी जी कहते हैं कि सच्चे संत सदा ही अपने अंदर वैराग्य-वृत्ति धारण किये हुए होते हैं। संतों ने अपने मन से द्वैत का भाव मिटा कर मन को निर्मल कर दिया है। वे अविद्या/अज्ञान की नींद से जाग गये हैं। वे सचेत हो गये हैं और अब मेरु पर्वत पर स्थित महल में प्रियतम परमेश्वर के साथ होली/फाग खेल रहे हैं।

लौकिक और अलौकिक विषय-भोग के प्रति अनासक्ति ही 'वैराग्य' है। इस लोक और परलोक के विषय-सुख आदि भोगने के प्रति जो अनासक्त/उदासीन होता है, उसे 'वैरागी' कहते हैं। सांसारिक बंधनों से मुक्ति पानी है तो प्रारंभ वैराग्य धारण करने से ही करना होगा। आत्म-अनात्म के विवेक द्वारा, वेदांत शास्त्र के श्रवण द्वारा अथवा सतगुरु के उपदेश द्वारा यह बात समझी जा सकती है कि यह जगत् और जीव विनाशी हैं। संसार के सभी भौतिक सुख अंततः दुखदायी हैं। जन्म-मरण के कुचक्र में फँसाने वाले हैं। अपने अंदर झाँक कर वृत्तियों को देखने से वैराग्य निर्माण हो सकता है। सच्चे संत अपने भीतर वैराग्य धारण किये हुए होते हैं। वे अपने भीतर वाली वैराग्य रूपी अग्नि से विषय-विकार रूपी सेना/फौज को जला कर भस्म कर देते हैं। जली हुई इंद्रियों को धीरज द्वारा दृढ़ता से पकड़ कर रखते हैं, संयम के फँद में फाँस कर अंतर्मुख कर डालते हैं। (इति संत ज्ञानेश्वर) बिना वैराग्य के परमेश्वर को पाना संभव नहीं है। सच्चे संतों के संबंध में संत ज्ञानेश्वर कहते हैं कि वे चंद्रमा की भाँति निष्कलंक, स्वच्छ होते हैं। मानों किसी को अपने तेज/ताप से दग्ध न करने वाले सूर्य हैं। संत भी मनुष्यों के मित्र एवं संबंधी हैं। सच्चे और वैरागी संतों के संबंध में यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि वे करुणासिंधु एवं परोपकारी होते हैं। उनके सान्निध्य से मनुष्य अपना जीवन सफल कर सकने में समर्थ बन जाता है। सामी साहब ने भी ऐसे ही संतों की विशेषता का वर्णन किया है। संत तुकाराम महाराज के शब्दों में,

काय सांगो आता संतांचे उपकार। मज निरंतर जागवती।
काय द्यावे त्यासी व्हावे उतराई। ठेविता पायी जीव थोडा।।

■

सन्यासी सेई, माणिनि सुखु सरूप जो,
सामी जिनि जी साध-संगि, ममत मिटी वेई,
पियनि पियालो पिरेम जो, तनु मनु धनु डे‌ई,
दिरिष्टि खुली पेई, सहजे गुल गुलाब जां.

सामी साहब कहते हैं कि संन्यासी वे हैं, जो स्वरूप (स्वस्वरूप, अंतरात्मा, ईश्वर) के आनंद का अनुभव करते हैं। साधु-संतों की संगत में आने से उन मनुष्यों का ममत्व-भाव मिट गया है। ऐसे सन्यासी तन, मन और धन देकर प्रेम का प्याला पीते हैं। उनकी दृष्टि ऐसे खुल गयी है, जैसे गुलाब की कली खिलकर फूल बन जाती है।

'संन्यास' का अर्थ है सम्यक् न्यास। 'सम्यक्' का अर्थ है योग्य रीति और न्यास का अर्थ है त्याग। अर्थात् उपाधियों का योग्य रीति से किया गया त्याग ही 'संन्यास' है। संन्यासी वृत्ति यानी आसक्ति न रखने की वृत्ति। संन्यास का सामान्य अर्थ है सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाना । सन्यास जीवन का चौथा आश्रम है। जिसमें सभी के संग का त्याग करना पड़ता है। 'मनुस्मृति' भी यही बात कहती है। गीता में निष्काम भाव से किये गये कर्मों को 'संन्यास' कहा गया है। सारांश, संन्यासी के लिए त्याग, आसक्ति से मुक्त होना आवश्यक है। संन्यासी को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। उदा. कमंडलु और दंड धारण करना, मौन धारण करना, सत्य वचन बोलना ॐकार का उच्चारण करना आदि । संन्यासी को चारों वर्णों के लोगों के पास जाकर भिक्षा लेनी/माँगनी पड़ती है। जो मिले, उसी में संतोष मान लेना पड़ता है। संन्यासियों के चार भेद हैं- हंस, परमहंस, बहुदक और कुटीचक्र। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संन्यास त्याग पर आधारित होता है। शारीरिक दृष्टि से सन्यास की तुलना में इच्छाओं के त्याग रूपी मानसिक संन्यास को सच्चा संन्यास माना गया है।

महाकवि सामी के विचारानुसार वे मनुष्य सच्चे संन्यासी कहे जा सकते हैं, जो अपने मन-मंदिर में ही परमात्मा के दर्शन कर सच्चा सुख-संतोष पाते हैं। इसके लिए उन्हें घर-संसार का त्याग करने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे मनुष्य भीतर से संन्यासी होते हैं, मन से त्यागी होते हैं। सत्संगति के कारण उनके मोह, ममता, आसक्ति आदि भाव नष्ट हो चुके होते हैं। भौतिक जगत में रहते हुए भी वे स्वयं तो प्रेम का प्याला पीते हैं और दूसरों को पिलाते रहते हैं। अंतर्ज्ञान होने के कारण वे प्रभु के दर्शन करने के योग्य बन जाते हैं। ऐसे ही मनुष्य सच्चे संन्यासी हैं।

■

सभ खे कालु कहारु, मारे अची ओचितो,
खंयो वञे खिण में, जुवानु ॿुढो अऊं ॿारु,
छॾे तमअ तन धन जी, तूं भी थी तियारु,
मतां करें इतिबारु, सामी विहें सुवास ते.

मनुष्य को चेतावनी देते हुए सामी साहब कहते हैं, ‘‘हे मनुष्य ! काल (मृत्यु) महाभंयकर है, जो अचानक ही आकर जीवों को मार डालता है। निर्दयी काल पल भर में जवान, वृद्ध और बालक को उठाकर ले जाता है। मृत्यु किसी भी क्षण में आ सकती है। इसलिए तुम भी अपनी देह और धन का मोह त्याग कर मृत्यु के लिए तैयार हो जाओ। वह कभी भी आ सकती है। तुम अपने श्वासों पर कभी भरोसा/विश्वास मत करना।’’

काल का अर्थ है यम, मृत्यु, मौत। काल नित्य और अनंत है। जीव के जन्म से लेकर उसके पीछे-पीछे चलने वाला काल ही होता है। अर्थात् काल सदा साथ रहता है। किसी को पता नहीं है कि आगे क्या होने वाला है। अपनी मृत्यु के संबंध में भी हम अनभिज्ञ होते हैं। कब, कहाँ कैसे काल आकर हमें दबोच लेगा, इसकी सुध किसी को नहीं है। यमदूत अचानक ही आ जाते हैं। और जीव को मारकर घसीट कर ले जाते हैं। यम/काल किसी को नहीं छोड़ता। राजा हो या रंक, योद्धा हो निर्बल, सामान्य हो या सज्जन मनुष्य, बूढ़ा हो या जवान, कोई भी काल/मृत्यु के चँगुल से बच नहीं सकता। मृत्यु मानो यमराज की कठोर छड़ी है, जिसकी मार सब प्राणियों पर पड़ती है। मौत किसी की परवाह नहीं करती और न ही किसी पर दया करती है। जिसने भी जन्म लिया है, उसके भाग्य में मृत्यु अवश्य ही लिखी हुई होती है। सभी प्राणी मर्त्य हैं, इस कारण धरती को ‘मृत्युलोक’ भी कहा गया है। कहा जा सकता है कि मनुष्य के जन्म के साथ उसकी मृत्यु भी साथ में जन्म लेती है और जो जीवन के अंत तक उसके साथ रहती है। अत: इस यथार्थ को समझकर अपना जन्म सफल/सार्थक करने का प्रयत्न करना चाहिए। मृत्यु आने के पहले मर कर मृत्यु पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। आत्मज्ञान, स्वस्वरूप ज्ञान और भक्ति से यह संभव हो सकता है।

इसी तथ्य को समझाते हुए सामी साहब ने भी मनुष्य मात्र को सचेत किया है। रहीम के शब्दों में,

सदा नगारा कूच का, बाजत आठों याम।
रहिमन जग में आइकै, को करि रहा मुकाम।।

■

सभ खे रुआरे, मोहे माया मोहिणी,
भवाए भव-सिंध में, नाना रूप धारे,
सामी बचो को सूरिमो, सतिगुरू संभारे,
बेहदि ॾिओ ॿारे, पूरनु ॾिठो जंहिं पीअ खे.

माया के प्रभाव का वर्णन करते हुए सामी साहब कहते हैं कि माया मोहिनी जो सभी मनुष्यों को मोह कर रुलाती रहती है। माया नाना रूप धारण कर मनुष्यों को संसार रूपी सागर में भटकाती रहती है। संसार में विरला कोई वीर मनुष्य होगा, जिसने सतगुरु का स्मरण कर, सतगुरु से अंतर्ज्ञान प्राप्त कर, अनंत का दीप जला कर प्रियतम परमात्मा के दर्शन किये होंगे।

जो नहीं है, जिसका यथार्थ अस्तित्व नहीं है, वह 'माया' है। जगत् की उत्पत्ति का विचार करते समय माया की कल्पना करनी पड़ती है। अद्वैत का बोध कराने के लिए माया को स्वीकार किया गया है। केवल माया से जगत् नहीं हो सकता, इसलिए मानना पड़ता है कि माया ब्रह्म के आश्रय में होती है। जीवात्मा रूप में ब्रह्म होते हुए भी उसे अपने सच्चे/यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता और वह स्वयं को परमेश्वर से अलग मानने लगता है। यह जिसके कारण होता है, वह माया है। माया की 'आवरण' और 'विक्षेप' नामक दो शक्तियाँ होती हैं। 'आवरण' शक्ति के कारण जीव स्वयं को परमात्मा से अलग/ निराला मानता है। माया को ही अविद्या, अज्ञान, प्रकृति और प्रधान शक्ति कहा गया है। ब्रह्मविद्या से माया नष्ट हो जाती है। स्वामी विवेकानंद जी के शब्दों में 'माया प्रकृति है, माया जीवन और मृत्यु है। माया अच्छे और बुरे, ज्ञान और अज्ञान का मिश्रण है। हम जिसमें बाँधे जाते हैं, वह माया है।' संत कबीर ने माया को 'ठगनी' कहा है, जो सभी मनुष्यों को ठगती रहती है।

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग ने ठगनी लगी, ता ठग को आदेस।।

सामी साहब ने भी अनेक रूप धारण करने वाली इस माया को 'मोहिणी' अर्थात् मोहिनी कहा है, जो मनुष्यों को मोहित कर, जीवों को भवसागर में भटकाती रहती है। जीव को असंख्य योनियों में, जन्मों में भटकना पड़ता है। उसे मुक्ति नहीं मिलती । किन्तु मनुष्य-देह मिलने पर जीव को मुक्ति मिल सकती है। माया का आवरण हटा कर परमेश्वर को पा सकता है। आवश्यक है अपने भीतर के अज्ञान के अंधकार को दूर करना।

कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि।
कोइ इक साधु ऊबरा, तोड़ी कुल की कानि।।

■

सभ में सुञाणनि, आशिक पंहिंजे यार खे,
अंदरि बाहरि दह दिसा, साणु सदा जाणनि,
नंहं चोटीअ ताईं चूरि थिया, बेधिया जे बाणानि,
सामी सियाणनि, अहिड़ो पदु पचायो.

सामी जी कहते हैं कि प्रभु के प्रेमी/भक्त अपने प्रियतम परमात्मा को सभी पदार्थों में देखते हैं। हर वस्तु में उन्हें परमेश्वर दिखाई देता है। वे अपने प्रियतम प्रभु को अंदर-बाहर, दसों दिशाओं में, सदा अपने साथ ही समझते हैं। अर्थात् परमेश्वर कहीं भी उनसे अलग नहीं है। सच्चे प्रेमी/भक्त प्रेम के बाणों से घायल हो जाने के कारण नख-शिख तक बेसुध होकर पड़े हैं। अर्थात् वे प्रभु के प्रेम में मदमस्त हो गये हैं। ऐसा पद केवल सयाने, विवेकवान, ज्ञानीजनों ने ही प्राप्त किया है। अर्थात् ऐसे अंतर्ज्ञानी ही इस मंजिल तक पहुँच सके हैं।

जिसके मन में प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम है, वह सचमुच प्रभु के पास हैं। क्योंकि प्रभु स्वयं ही प्रेम है। ईश्वर के प्रेम रूपी सागर में स्वयं को डुबा देनेवाला सच्चा प्रेमी-भक्त ही अनंत सुख के मोती प्राप्त कर सकता है। अपने अंत:करण में परमात्मा के दर्शन करने वाले भक्तों को यह बोध हो जाता है कि मैं उस परम-आत्मा का अंश हूँ। इतना ही नहीं, मैं परमात्मा ही हूँ- 'अहं ब्रह्मास्मि।' और यह परमात्मा प्रत्येक प्राणी के भीतर निवास करता है। यह ज्ञान हो जाने पर सच्चे भक्त/प्रेमी हर मनुष्य में परमात्मा के दर्शन करता है। वह जान लेता है कि परमेश्वर घट घट वासी है। जो ब्रह्मांड में है, वही पिंड (शरीर) में भी है। परमेश्वर के प्रेम में निमग्न प्रेमी-भक्त जन अपने भीतर और बाहर परमात्मा को ही अपने साथ पाते हैं। वे परमेश्वर को अपने आप से अलग नहीं कर सकते। संत तुकाराम महाराज के शब्दों में,

जेथे जातों तेथें तू माझा सांगाती। चालविसी हाती धरुनियां।
चालों वाटे आम्ही तुझाचि आधार। चालविसी भार सवे माझें।।

संत तुकाराम जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ परमेश्वर भी उनके संग चलते हैं। उन्हें परमेश्वर का ही आधार है और वे ही उनका हाथ पकड़कर चलाते हैं। उनका भार वहन करने वाले भी प्रभु स्वयं है। वस्तुत: भक्ति-मार्ग में भक्त परमात्मा का ही हो जाता है। परमात्मा से एकरूपता, समता स्थापित करने वाला ही परमानंद का अनुभव कर सकता है। परमेश्वर के दिव्य दर्शन करने की स्थिति 'ब्राह्मी स्थिति' होती है। ब्रह्म के स्वरूप की साक्षात् अनुभूति करते हुए उसके साथ एकरूपता स्थापित करना ही 'ब्राह्मीस्थिति' है।

■

सभेई संसारु, माया कयो वसि पांहिंजे,
खाली छॾियाई कोन को, जुवानु बिरिधु ऐं ॿारु,
विझी ॼारु भरम जो, कियाई खलक खुवारु,
को सामी पुरुखु सचारु, जाॻी छुटे जिन खों.

माया की करनी और प्रभाव का वर्णन करते हुए सामीजी कहते हैं कि माया ने सारे संसार को अपने वश में कर लिया है। माया ने किसी को नहीं छोड़ा है- न वृद्ध को, न जवान को और न ही किसी बालक को। अर्थात् वह सबको अपने फाँस में बाँधे हुए है अपना भ्रम-जाल बिछाकर उसने सभी मनुष्यों को पकड़ कर दुखी कर लिया है। संसार में कोई विरला सत्पुरुष होगा, जो जाग्रत होकर माया से अपना पिंड छुड़ा सकेगा।

माया क्या है ? ईश्वर के आज्ञानुसार कार्य करने वाली शक्ति का नाम 'माया' है। माया के अनेक नाम हैं। जैसे अविद्या, अज्ञान, प्रकृति, प्रधान शक्ति आदि। ब्रह्मविद्या/ अध्यात्मज्ञान द्वारा माया का नाश होता है, इसलिए माया को 'अविद्या' कहते हैं। माया ब्रह्म के स्वरूप को ढँक लेती है और ब्रह्म का ज्ञान करने नहीं देती, इस कारण माया को 'अज्ञान' नाम दिया गया है। जगत् का कारण होने के कारण माया 'प्रकृति' है। सभी कार्य अपने में विलीन कर प्रलय के समय माया के उदासीन रूप को तथा उस समय सत्व, रज और तम-इन तीनों गुणों की साम्य-अवस्था को 'प्रधान' कहा जाता है। माया कभी स्वतंत्र नहीं रहती, वह चैतन्य/ब्रह्म के आश्रय में रहने वाली होती है। इसलिए माया को 'शक्ति' कहा जाता है। माया अति प्रभावशाली एवं शक्तिशाली होती है। माया के कारण ही यह स्थूल एवं सूक्ष्म सृष्टि ब्रह्म पर आश्रित होने का आभास होता है। माया ऐसे जगत् का अनुभव कराती है, जो वास्तव में है ही नहीं। माया के कारण जीव को अपने मूल स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। माया का आभास तो होता है, पर वह दिखाई नहीं देती। माया न होकर भी प्रतीत/महसूस होती है। माया निर्गुण ब्रह्म में निर्गुणता से रहती है। जब वह विश्वरूप में प्रकट होती है, तब इसे 'कार्य-रूपिणी माया' कहते हैं। माया ब्रह्म के अधीन होती है। माया का निर्माण और नाश ब्रह्म का सहज स्वभाव है। यह माया मनुष्यों के लिए 'अज्ञान' बन जाती है। यह अज्ञान 'आत्मज्ञान' द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है। सतगुरु की कृपा से कोई सच्चा साधक आत्मज्ञान प्राप्त कर माया के महाजाल से मुक्त हो सकता है।

■

साध संगति ॾे पेरु, खंयो जंहिं खुशीअ सां,
मिटियो तंहिंजे मन मों, अविद्या, भरमु अंधेरु,
पाए सुखु सरूप जो, थियो सामी चए सुमेरु,
करे सघे केरु, महिमा तंहिंजी मुंहं सां.

सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए सामी जी कहते हैं कि जो मनुष्य खुशी से संतों की संगत में, सत्संग में जाता है, उसके मन से अविद्या/अज्ञान और भ्रम का अंधकार मिट जाता है। ऐसा मनुष्य अपने स्वरूप का, परमात्मा का सुख प्राप्त करता है और फिर वह मनुष्य मानो मेरु पर्वत समान बन जाता है, जो स्वर्ण का है। ऐसे पुरुष की महिमा का वर्णन कोई भी मुख से नहीं कर सकता।

साधु-संतों की संगत 'सत्संग' है। संत स्वयं सत् का, सत्य का आचरण करने वालो होते हैं। हमारी संस्कृति में संतों का महत्वपूर्ण योगदान रही है। संसार में जीव का हित साधने वाले दो ही हैं- एक श्रुति-ग्रंथ और दूसरे संत। श्रुतियाँ दुर्बोध हैं किन्तु संतों की सीख सुबोध है। आत्मा की उन्नति अथवा मुक्ति को संत जन मानव-जाति का अंतिम उद्देश्य मानते हैं। संतों ने भक्ति-रस और स्वधर्म को अधिक महत्व दिया है। संतों के संग-सहवास से मनुष्य साधु-स्वभाव वाला बन जाता है। संत-समागम फलदायक होता है। सत्संग मानो संजीवनी है। इससे जीवन कल्याणमय हो जाता है। कहा गया है,

सतसंगत को फल यही, संशय रहइ न लेस।
ह्वै असथिर शुचि चित्त, पावे पुनि न कलेस।।

सच्चे साधु-संत मनुष्य मात्र के कल्याण-मित्र होते हैं। संत का सत्संग ज्ञान का झरना होता है, जहाँ मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझा सकता है। संसार में रहकर भी संसार के न होने वाले संतों ने मनुष्य मात्र के लिए भक्ति रूपी सेतु बाँधा है, जिसकी सहायता से भव-सागर तिर जाना आसान हो गया है। सामी जी भी यही बात समझाते हैं। संतों की संगत से, सतगुरु की शरण में जाने से अविद्या मिट जाती है, भ्रम दूर हो जाते हैं। संत ही आत्मज्ञान कराने वाले होते हैं। अत: जो कोई शुद्ध भाव से संतों के उपदेश आदि का पालन करता है, वह भक्ति द्वारा अनंत सुखों की, परमानंद की प्राप्ति करता है।

सतसंगति में सुख बड़ा, जो करि जाने कोय।
आधो छिन सत्संग को, कलिमल ढारें खोय।।

■

साधू जनु सुगमु, मारिगु ॾुसिनि मोख जो,
सामी रखियो कंहिं सूरिमे, कलिपत पारि कदमु,
मारे कयो जंहिं मन जो, भोलाओ सभु भसमु
घर में घरु अगमु, पाए वेठो पाकु थी.

सामी साहब कहते हैं कि सच्चे साधु-संत मनुष्य को मोक्ष प्राप्त करने का आसान मार्ग बताते हैं। विरल कोई शूर वीर ही इस मार्ग को अपना कर स्वयं को संयशों और भ्रमों से छुड़ाकर, मन के समस्त भ्रम आदि भस्म कर पाया है। उसके पश्चात् वह पवित्र/निर्मल होकर अपने ही घर (देह, शरीर) भीतर अगम्य घर (आत्मा) में परमात्मा को प्राप्त कर पाया है।

सच्चे साधु-संत परोपकारी होते हैं। अपने अस्तित्व की अपेक्षा भगवान के अस्तित्व का बोध कराने वाले संत जन मानो समाज का कल्याण करने वाले आध्यात्मिक वैद्य होते हैं। वे सांसारिक जीवों को भक्ति केंद्रित बोध/ज्ञान प्रदान करते हैं, परमार्थ की दृष्टि से भक्तों को ज्ञानी करने का प्रयत्न करते हैं। विषयों से दूर रहने का परामर्श देते हैं। राम नाम के जाप की औषधि देकर वे मनुष्यों के भव रोग के दु:ख को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। संतों ने अपने सकारात्मक दृष्टिकोण द्वारा पुराने/प्राचीन तत्व मूल्यों को तोड़-मरोड़ अथवा भंजन न करते हुए उनका शुद्धिकरण एवं प्रसंगानुसार नवीनीकरण करते हुए धर्म, संप्रदाय एवं धर्म-विचार पर अधिष्ठित समाज का अस्तित्व अबाधित रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसलिए सभी संत समाजाभिमुख होते दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने समाज को एक योग्य दिशा दिखाने का कार्य किया है। समाज-मन के चिंतन को एक विशिष्ट ऊँचाई प्रदान की है। जीवन को सँवारने, कल्याणकारी बनाने के लिए परमात्मा की भक्ति करने का एक सरल साधन देने वाले संतों ने तो मोक्ष-प्राप्ति का एक सीधा मार्ग भी बता दिया है। वह है अपने ही मन-मंदिर में परमेश्वर के दर्शन करने का मार्ग। अपने मन को निर्मल और पवित्र बनाने के लिए सभी संतों ने सत् वचनों की वर्षा की है। अपने मन को विकार रहित बनाना है, मन में छिपे हुए काम, क्रोधादि षड् रिपुओं से लड़ कर उन्हें अंदर से निकाल देना है। फिर शुद्ध भक्ति करना है। यही सरल मार्ग है नाम-स्मरण का! अपने ही हृदय में प्रभु को पाकर दर्शन का आनंद अनुभव करने का।

■

सामी कीम सॾाइ, ग्यानी पंडतु पाण खे,
इन्हीअ ममता मुठा केतिरा, तूं समुझी पाणु बचाइ,
आग्या मनी अगस्ति जियां, अविद्या सिंधु सुकाइ
झाती झरोके पाइ, त सन्मुखु ॾिसीं सुपिरीं.

अविद्या और ममता भाव से सावधान रहने के लिए सामीजी मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं, ''हे मनुष्य! तुम अपने आप को बड़ा ज्ञानी और पंडित मत कहलाओ। ज्ञान और पंडिताई के मोह-ममत्व और अहंकार ने कई लोगों को मुसीबत में डाल दिया है। इसलिए यह बात समझ कर तुम स्वयं को बचा ले। अभिमान से दूर रहो। तुम सतगुरू की आज्ञा का पालन कर अगस्त्य ऋषि की भाँति, अविद्या/अज्ञान रूपी समुद्र को सुखा डाले। उसके पश्चात् अपने मन में झाँक कर देखोंगे तो अपने सामने प्रियतम परमेश्वर दिखाई देंगे।''

इस जगत में दो प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं- ज्ञानी और अज्ञानी। ज्ञानी मनुष्यों में आत्मा का विवेक रहता है और अज्ञानी मनुष्यों के जीवन में अपनी देह के संबंध में अविवेक रहता है अत: उन्हें मूर्ख माना जाता है। वे अहंकारी भी होते हैं। आत्मज्ञान न होने के कारण वे ईश्वर को भुला बैठते हैं। माया-मोह-ममता में फँसे हुए ऐसे मनुष्यों को अपनी देह का अभिमान भी होता है। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हुई होती है। अविद्या के प्रभाव के कारण पढ़े लिखे लोग भी जब अपने आप को बड़ा मान कर चलते हैं, तो उनका समावेश अज्ञानी मनुष्यों में ही किया जा सकता है। क्योंकि केवल किताबें रटने से या पोथियों का पठन करने से कोई बड़ा पंडित अथवा ज्ञानी-ध्यानी पंडित नहीं बन जाता। संत कबीर के शब्दों में,

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ।।

व्यावहारिक जगत में दिखाई देने वाले मात्र पोथियाँ पढ़कर पोंगा पंडित बने हुए पुरुष रजोगुणी एवं तमोगुणी होते हैं। अनेक विकारों से ग्रस्त ऐसे अज्ञानियों को सामी साहब ने समझाने का प्रयत्न किया है और उन्हें प्रभु के दर्शन कर सकने का मार्ग भी बताया है, जिस पर चलकर वे अपना जीवन सुधार सकते हैं। यह मार्ग है मोह-ममत्व से दूर रह कर, अविद्या का नाश करना और अपने अंत:करण में झाँक कर परमात्मा के दर्शन करने के लिए सक्षम/समर्थ बनना!

■

सामी सभ जो देवु, आहे पुरखारथु पांहिंजो,
कोड़िनि में को हिकिड़ो, गुरमुखु ज़ाणे भेदु
अविद्या जो अहन्मेवु, कढियो जंहिं अंदर मों.

सामी साहब कहते हैं कि सभी मनुष्यों का देव उनका पुरुषार्थ (लक्ष्य, जतन, यत्न) है। यह भेद या रहस्य करोड़ों मनुष्यों में कोई एक गुरुमुख ही जानता है। अर्थात् एक ऐसा गुरुमुख, जिसने अपने भीतर से, हृदय से अविद्या का अहंकार, अहंभाव (अहन्मेव, अहंमति, अज्ञान) निकाल दिया है।

भारतीय धर्म-ग्रंथों में मनुष्य के लिए चार पुरुषार्थ बतलाए गये हैं, जिनको प्राप्त करना मनुष्य का कर्त्तव्य माना गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक ये चार पुरुषार्थ मनुष्य के 'जीवन-मूल्य' हैं। आज इन में बहुत परिवर्तन हो गया है। अर्थ को अधिक महत्व प्राप्त हो गया है तथा अन्य मूल्य भी इन में समाविष्ट हो गये हैं। किन्तु इन चारों के केन्द्र में 'पुरुषार्थ' समाया हुआ है। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ ही करना पड़ता है। अर्थात् प्रयत्न, ढाढ़स या हिम्मत का ही सहारा लेना पड़ता है। इसलिए प्रयत्न और हिम्मत ही सबसे बड़ा पुरूषार्थ मानना चाहिए। महाकवि सामी ने भी अपने श्लोक में इस पुरुषार्थ को ईश्वर मानकर उसका महत्व बतलाया है।

यह भूमि 'कर्मभूमि' है। यहाँ पर कर्म करने ही पड़ते हैं। कोई वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रयत्न तो करने ही पड़ते हैं। बिना प्रयत्न के कुछ भी मिलने वाला नहीं है। यह प्रयत्न ही मनुष्य का पुरुषार्थ है। कर्मरूपी यत्न, कोशिश, प्रयास ही 'देव' है। प्रयत्न करने की शक्ति धारण करने से ही सफलता मिल सकती है। जिस उद्देश्य, को पूर्ण करने के लिए मनुष्य यत्न करता है, वह मनुष्य प्रयोजन रूप 'पुरुषार्थ' शब्द से कहा जाता है। धर्म का आचरण करना भी उसके भावी सुख-रूप प्रयोजन के लिए है। इसी प्रकार अर्थोपार्जन भी पुरुषार्थ रूप प्रयोजन है। काम या काम-सुख की गणना भी पुरुषार्थ रूप से की गयी है। कोई भी साधारण जन इस काम-सुख का त्याग नहीं कर सकता। सबसे उत्तम पुरुषार्थ, पुरुष का प्रयोजन है मोक्ष की प्राप्ति करना। इसी के निमित्त उत्तम मोक्षोपयोगी धर्म भी पुरुषार्थ रूप से ही समझा जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य का कोई भी प्रयोजन हो, जिसके लिए मनुष्य उद्योग और यत्न करता है, वह सब पुरुष का, मनुष्य का 'पुरुषार्थ' है और मोक्ष ही सब की इच्छा का पुरुषार्थ है, सब का परम प्रयोजन है।

■

सारो जगु पचे, थो अविद्या जे अहंकार में,
जिएं बांदरु बाजीगर जे, हथ में नितु नचे,
विरिले कंहिं गुरमुख खे, वेई सांति अचे,
जंहिं खे संत सचे, सामी लायो लख में.

अविद्या के कारण निर्मित अहंकार के संबंध में सामीजी का कहना है कि यह सारा संसार अविद्या के अहंकार में जल रहा है। जैसे कोई बाजीगर/मदारी अपने हाथों से बंदर को सदा नचाता रहता है, उसी प्रकार अविद्या भी मनुष्य को नित्य ही नचाती रहती है। ऐसे जीव भीतर से अशांत होते हैं। किन्तु किसी विरले गुरुमुख को आंतरिक शांति और सुख का अनुभव होता है, जिसे किसी सच्चे संत ने (सतगुरु) ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया है।

अध्यात्म के क्षेत्र में परमात्मा जीव और जगत के परस्पर संबंध के बारे में अज्ञान को 'अविद्या' कहते हैं। किसी वस्तु के स्वरूप को ढँकने वाली शक्ति का नाम अविद्या है। अविद्या के दो कार्य हैं (1) आवरण (2) विक्षेप। आवरण का अर्थ है आत्म-स्वरूप के ऊपर परदा डालना। विक्षेप का अर्थ है आत्म-स्वरूप पर अन्य किसी वस्तु का आरोप करना। जीव/मनुष्य में अविद्या होती है। ब्रह्म/परमेश्वर तो एक ही सत्य वस्तु है किन्तु अविद्या के कारण मनुष्य की ओर से अनेक नाम-रूपों का आरोप किया जाता है। ये नाम रूप ही माया है। अविद्या के कारण ही ईश्वर जीव, जड़ पदार्थों आदि के रूप में भासमान होता है।

अविद्या के कारण से ही मोह, मान, राग, द्वेष, संशय और अहंकार आदि सब बाँधने वाले बंधन, मनुष्य को बहुत पीड़ित करते हैं। सामीजी ने इसी अविद्या के अहंकार की बात कही है, जिसके कारण सारा जगत् अंदर से जल रहा है, दु:खी हो रहा है। इसी अविद्या के चुँगल में फँसा हुआ मनुष्य अविद्या के इशारे पर नाच रहा है, व्यवहार कर रहा है। मनुष्य से सभी प्रकार के कृत्य कराने वाली अविद्या ही है। शुद्ध भक्ति अथवा नाम-स्मरण आदि द्वारा अविद्या/माया के इन बंधनों को पहचानकर छोड़ने के लिए उत्साहित होना और अंत में अविद्या रूपी बंधन को भी छोड़ देना, यही मुक्ति रूप परम-पद की प्राप्ति है। इन्हीं बंधनों से बंधा हुआ जीव 'बद्ध' कहा जाता है और इन्हीं से छूट जाने पर 'मुक्त' कहा जाता है। इस मुक्ति के लिए सच्चे संत/सतगुरु की नितांत आवश्यकता है।

■

सुहाग॒िणि सा ई, जा पिर परिची कई पांहिंजी,
बिना हार सींगार जे, खसम खे भाई,
केहिड़ी ग॒णियां मुख सां, तंहिंजी वड॒ाई,
सामी सदाई, मिली रहे महबूब सां.

सुहागिन (भक्तिन) स्त्री के लक्षण बतलाते हुए सामी जी कहते हैं कि वही सच्ची सुहागिन है, जिसने अपने प्रियतम परमेश्वर को प्रसन्न कर अपना बना लिया है। पति की भक्ति करने वाली ऐसी ही स्त्री पति को भाती है। ऐसी स्त्री चाहे शृंगार नहीं भी करे, तो भी पति को वह अच्छी लगती है। ऐसी निष्ठावन पतिव्रता सुहागिन की मैं कितनी और कैसे स्तुति करूं? ऐसी सुहागिन (भक्तिन) सदा ही अपने प्रियतम पति के संग रहती है।

'सुहागिन' का अर्थ है सौभाग्यवती, जिसका स्वामी जीता हो अर्थात् सधवा स्त्री। अध्यात्म अथवा भक्ति के क्षेत्र में परमात्मा को अपना पति मान कर उससे प्रेम करना, भक्ति करना माधुर्य भाव वाली भक्ति है। इस प्रकार की भक्ति के लिए समर्पण का भाव अनिवार्य है। परमेश्वर रूपी पति के प्रेम में सराबोर/आप्लावित होकर स्वयं को भुला कर प्रियतम पति के साथ रहने वाली स्त्री सुहागिन कही जाती हैं। सीता, सती सावित्री, मीराबाई और राबिया आदि ऐसी ही सुहागिन स्त्रियाँ हैं। ये सभी प्रियतम परमेश्वर से विलग होकर रहना नहीं चाहती। गोपियाँ भी इसी श्रेणी में आती है। इन सबके लिए पति परमेश्वर का विरह असह्य है।

महाकवि सामी भी आध्यात्मिक स्तर पर ऐसी ही सुहागिनी के लक्षण बतलाते हैं। प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करते हुए वे मानो सुहागिन स्त्री की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि वह स्त्री (भक्तिन) सुहागिन है, जो अपने प्रियतम परमेश्वर को संतुष्ट कर अपना बना लेती है और इसके लिए उसे प्रसादन आदि का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। उसका सच्चा प्रेम-भाव अथवा सच्चा भक्ति भाव ही उसका शृंगार है, जो प्रभु को प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त है। भला जिसने अपना हृदय और हृदय स्थित भाव ही प्रभु के सामने प्रकट कर दिये हैं, उसे प्रीतम को रिझाने के लिए अन्य किसी बाह्य आडबंर की आवश्यकता क्यों होगी? सुहागिन का समर्पण भाव ही परमेश्वर को प्रिय होता है। ऐसी स्त्री ही सदा प्रिय-मिलन के अलौकिक आनंद का उपभोग करती है। प्रेम या भक्ति में यह एकरूपता, तल्लीनता, समता या लय-लीन होने का भाव महत्वपूर्ण है।

■

सो नांगो निरबा॒नु, सो अवधूती आतमा,
जो कटे फास गि॒चीअ मों, अविद्या आसानु,
असतामलु अवले जां, डि॒से अनभइ भानु,
सामी सभु जहानु, आहे जंहिंजे आसिरे.

सामी साहब के विचारानुसार वही वस्त्रहीन, नग्न फकीर/साधु है और वही अवधूत है, जिसने अपने गले में पड़ी हुई अविद्या की फाँस (फँदे) को सरलता से काट लिया है (स्वयं को मुक्त कर लिया है।) ऐसा नागा साधु या अवधूत 'हस्तामलक' (वह बात या वस्तु जो सब ओर पूर्ण रूप से स्पष्ट और ज्ञात होकर दिखाई देती हो, जैसे हाथ पर का आँवला) की तरह आत्मिक ज्ञान रूपी सूर्य स्पष्ट रूप से देखता है। अर्थात् उस अंतरात्मा/परमात्मा के दर्शन करता है, जिसके आधार पर यह सृष्टि टिकी हुई है।

परमात्मा को पाने के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाएँ की जाती है। साधक भी भिन्न-भिन्न होते हैं। नग्न रहकर, दिगंबर अवस्था में साधना करने वाले हजारों लोग हैं तो अवधूत, योगी बन कर भी साधना करने वालों की कमी नहीं है। सिद्ध मार्ग के योगी पुरुषों को 'अवधूत' कहा गया है। यह मार्ग आदिनाथ (शंकर) निर्मित है। वर्ण और वर्णाश्रम धर्म की अपेक्षा मात्र आत्मा को ही देखने वाले 'अवधूत' कहलाते हैं। पिंड और ब्रह्मांड में व्याप्त शिव/शंकर से एकरूपता स्थापित करना अवधूत या नाथ-संप्रदाय का उद्देश्य होता है। गुरु गोरखनाथ द्वारा स्थापित नाथपंथ में पिंड अर्थात् शरीर की कुंडलिनी शक्ति को जगाकर उसे मस्तिष्क के सहस्रार-चक्र में पहुँचाना एवं शिव-शक्ति की एकरूपता साधने की, साधना को बड़ा महत्व प्राप्त है। संत एकनाथ की लिखी हुई 'अवधूत गीता' के अनुसार जो पुरुष अपने अहंकार/अहंभाव को धो डालता है, वह अवधूत है। वही योगी एवं पवित्र है। वह संकल्प विकल्प से रहित होता है। अवधूत अपने सारे शरीर पर शुद्ध भस्म लगाने वाला, सांसारिक बंधन तोड़कर ब्रह्मानंद में मग्न रहता है।

सामी साहब ने ऐसे ही इच्छारहित अवधूत का वर्णन किया है, जो सांसारिक बंधन तोड़कर प्रभु की तलाश में है और जिसे अपने भीतर ही साक्षात्कार हुआ है।

सो जोगी जाके मन में मुद्रा। राति दिवस न करई निद्रा।।
मन में आसण, मन में रहणा। मन का जप तप मन सूंकहणा।।
मन में खपरा मन में सींगी। अनहद बैन बजावै रंगी।।
पंच परजारि भसम करि मूका। कहै कबीर सो लहसै लंका।।

■

सो प्रेमी पूरनु, सो साधू-जनु सूरिमो,
जो आणे सीता सुरिति खे, मारे मन रावणु,
कढे ड॒ेहि ड॒हीअ मों, सामी मथे मखणु,
अचणु अऊं वञणु, ड॒िसे कोन आकास में.

सामी साहब एक रूपक द्वारा ईश्वर प्रेमी पुरुष और सच्चे साधु-संत के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं, ''वही पूर्ण प्रेमी (भक्त) है और वही शूरवीर साधु-संत है, जिसने 'सुरति' (सुधि, स्मृति, स्मरण) रूपी सीता को प्राप्त करने के लिए मन रूपी रावण को मार डाला है। फिर उस वीर ने अपने शरीर रूपी दही का मंथन कर, उसमें से अंतरात्मा/परमात्मा रूपी नवनीत (माखन) निकाला है। उसके पश्चात् वह परब्रह्म/परमेश्वर का रूप देखने और अलौकिक आनंद प्राप्त करने में इतना तल्लीन/मग्न हो गया है कि किसी के आने जाने की ओर भी वह ध्यान नहीं दे पाता और न ही उसका ध्यान आकाश की ओर जाता है।

वेदांत में जीव को ब्रह्म ही कहा गया है 'जीवो ब्रह्मैव नापर।' इसलिए ब्रह्मदेव से लेकर सूक्ष्म जीव-जंतुओं तक सबको 'जीव' कहा जाता है। किसी 'उपाधि' के कारण जीव को कोई श्रेष्ठ या निम्न रूप प्राप्त होता है। अविद्या की उपाधि के कारण जीव वासना/इच्छा वाले कर्मों में बंध जाता है और सुख-दुख, मान-अपमान, जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जाता है। जीव अपने मूल/सत्य स्वरूप को भुलाकर अपने स्थूल शरीर को सब कुछ समझने लगता है कर्मरूपी फल खाने वाला जीव अपने आत्मस्वरूप (अहं ब्रह्मास्मि)। को भुलाकर माया-जाल में फँस जाता है। जब वह 'मैं कर्ता', 'मैं भोक्ता' के भाव से स्वयं को अलग कर देता है, तभी उन बंधनों से मुक्त हो जाता है। इसके पश्चात् वह साधना/भक्ति कर, साधु संतों के संग में रहकर सतगुरु के ज्ञान द्वारा अपने मूल स्वरूप को पहचान लेता है तथा परमात्मा के साक्षात् दर्शन कर लेता है।

सामी साहब भी यह बात एक रूपक अलंकार द्वारा समझाते हैं। यहाँ पूर्ण प्रेमी (भक्त) है। सच्चा शूरवीर संत है। दोनों ही परमात्मा को पाना चाहते हैं। दोनों को ही परब्रह्म का साक्षात्कार कर अलौकिक आनंद का उपभोग करना है। यह आनंद विरले किसी को प्राप्त होता है। यहाँ रूपक है सीता रूपी सुरति का, स्मृति का, कि मैं ब्रह्म हूँ। जीव को इस सत्य का विस्मरण हो गया है। सीतारूपी यह स्मृति (याद) मनरूपी रावण ले गया है। जैसे श्रीरामजी ने सीता को रावण के बंधन से छुड़ाया था- रावण को मार कर । वैसे ही मनरूपी रावण को मारकर स्मृति रूपी सीता को मुक्त कर शरीर रूपी दही का मंथन कर अंतरात्मा रूपी माखन निकालना पड़ेगा। तभी साक्षात्कार हो सकेगा।

■

सो साधू जनु ज॒ाणु, जो साधे मनु सुधि करे,
दुख सुख लाभ अलाभ में, रहे साबूती साणु,
सामी सभकंहीं जो, केवल घुरे कल्याणु,
कढी पांहिंजो पाणु, पिए पियारे राम - रसु.

साधु-संत के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं कि साधु पुरुष वह है, जो अपने मन को शुद्ध करने के लिए अपनी इच्छाओं कामनाओं को वश में कर लेता है। ऐसा साधु पुरुष दुःख-सुख और लाभ-हानि में स्थिर रहता है। वही सच्चा साधु है, जो संसार के सभी जीवों का कल्याण चाहता है। वह अपने भीतर से अहंकार/'अहं' का भाव निकाल कर स्वयं को परमेश्वर की भक्ति का अमृत-रस पीता ही है, साथ-साथ दूसरों को भी पिलाता है।

सच्चे साधु संत मानो चलते-फिरते देव होते हैं। साधु संत समाज के हित करने वाले होते हैं। समाज में भक्ति या नाम-स्मरण का प्रचार-प्रसार करने वाले संत जन परोपकारी होते हैं। सूर्य की भाँति स्वाभाविक रीति से मनुष्य मात्र पर उपकार करने वाले संत अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु लोक-कल्याण के लिए कार्य करते रहते हैं। संतों के उपदेश अथवा उनके द्वारा रचित ग्रंथों से दुःखमय गृहस्थी के लिए उपचार/उपाय मिल जाता है। संत ही मनुष्य को इस बात की प्रतीति/एहसास कराते हैं कि 'तुम विषयों के नहीं अपितु भगवंत के हो।' संत विषयों की आसक्ति को कम करने वाले होते हैं। मनुष्य में ईश्वर-दर्शन की प्यास निर्माण करने वाले संत उसे अपने सत्य स्वरूप की पहचान कराने वाले होते हैं। स्वयं संतोष प्राप्त कर दूसरों को भी संतोष प्राप्त कराने का प्रयत्न करते हैं। यह उनका मानव-समाज पर किया हुआ बड़ा उपकार है। संतों ने स्वयं विषय-सुख न भोगकर दूसरों को तारने का प्रयास किया है। संत ज्ञानेश्वर ने अपनी 'ज्ञानेश्वरी' के 'पसायदान' में ईश्वरनिष्ठ संत-सज्जनों के स्वरूप एवं कार्य का वर्णन करते हुए कहा है कि जिन के मन में कुछ प्राप्त करने की कामना शेष नहीं है, ऐसे पूर्णकाम संत ही लोक-कल्याण स्वधर्म का आचरण करने में मग्न रहते हैं। ऐसे संतों की महिमा का वर्णन करते हुए उनकी तुलना कल्पतरु, चिंतामणि, सागर, चंद्र और सूर्य से की है-

चलां कल्पतरूंचे अरव। चेतनाचिंतामणींचे गांव।
बोलते जे अर्णव। पीयूषाचे॥
चंद्रमें जे अलांछन। मार्तंड जे तापहीन।
ते सर्वांही सज्जन। सोयरे हेतु॥

■

सो ई संतु भग॒तु, सो ई पंडतु ग्यानवानु,
मिरग् तिरिष्ना जे जल जां. ड॒िठो जंहिं जग॒तु,
मिटायाईं मन मों, सामी ममता मतु,
अनभइ आतम ततु, पाए परिचो पाण सां.

सामीजी संत, भक्त, पंडित और ज्ञानी पुरुष के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने इस संसार को मृगतृष्णा के जल की भाँति असत्य समझा है, जिसने अपने मन से ममता, मोह आदि विकारों को निकाल लिया है, जिसने आंतरिक ज्ञान द्वारा परमात्मा को पहचाना/समझा है और मन में आत्म-तत्व (परमात्मा) के दर्शन का आनंद प्राप्त किया है, वही सच्चा संत, भक्त, पंडित अथवा ज्ञानी पुरुष है।

इस भौतिक जगत में भिन्न-भिन्न स्वभाव और वृत्तियों वाले लोग दिखाई देते हैं। अपने आप को बड़ा, चतुर, धनवान, बलवान आदि मानने वालों की संख्या भी कम नहीं है। गुण न होते हुए भी स्वयं को संत, पंडित और भगवान मानने वालों की भी कमी नहीं है, जिसके पीछे मात्र ढोंग, पाखंड एवं स्वार्थ ही दिखाई पड़ता है। इसके पीछे है धन कमाना, भोग-विलास अथवा अपना प्रभुत्व कायम करने की कामना। अपनी देह और भौतिक जगत को महत्व देने वाले ऐसे पुरुष इस सत्य से अनभिज्ञ रहते हैं कि यह सब क्षणभंगुर है, एक दिन नष्ट हो जाने वाला है। यह जगत् मिथ्या है, मृगजल की भाँति आभास मात्र है, सत्य केवल परमात्मा है। अत: उसी की भक्ति करनी चाहिए। इसके लिए अपने मन को शुद्ध करने हेतु भीतर से मोह, ममत्व, लोभ, क्रोध आदि विकारों को निकालना अत्यंत आवश्यक है। मन शुद्ध और पवित्र हुए बिना हमें न अतंर्ज्ञान हो सकेगा और न ही परमेश्वर के दर्शन अथवा परमेश्वर की प्राप्ति हो सकेगी। भौतिक जगत् से विमुख होकर अंतर्मुख होना अनिवार्य है। यह तत्त्व और तथ्य जिसकी समझ में आया है और जो इसे आचरण में लाता है, उसी को सच्चा संत, सच्चा भक्त या पंडित, ज्ञानवान आदि कहना चाहिए। मात्र आडंबर, ढोंग, झूठा बड़प्पन आदि का कोई महत्व नहीं है। भक्ति में शुद्धता, आसक्तिहीनता एवं एकनिष्ठता होनी ही चाहिए। सामी साहब भी इसकी आंतरिक शुद्धि एवं पवित्रता का उल्लेख करते हैं।

आशा तजि माया तजै, मोह तजै अरु मान।
हरष शोक निंदा तजै, कहै कबीर संत जान।।

■

संतनि जो दरिसनु, ड॒िसी नेण ठरी पिया,
ब॒ुंधी वाक विलास जा, लुअं लुअं भी परिसनु,
अविद्या कलिपत न रही, मिटियो सभु अननु,
पाए आतम धनु, सामी सुमहियो सेज ते.

सच्चे संतजनों के दर्शन की महिमा का वर्णन करते हुए सामीजी कहते हैं, ''संतों के दर्शन कर मेरी आँखें ठंडी हो गयीं, प्रसन्न हो गयीं। संतों के मधुर वचन सुनकर मेरी रग-रग प्रसन्न हो गयी। उसके पश्चात् मेरे मन का अज्ञान (अविद्या) भी दूर हो गया। मन के अंदर (छिपे हुए भ्रम, असत्य/मिथ्या विचार आदि भी नष्ट हो गये। संतों के दर्शन द्वारा मुझे आत्मिक धन ही मिल गया और फिर में अलौकिक आनंद प्रदान करने वाली शय्या पर सो गया।''

जो व्यक्ति परमात्मा से एकरूप हो गया है, वह संत है। संतों के जीवन का प्रधान उद्देश्य होता है लोक का, सामान्यजनों का आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन करना। संत ईश्वरस्वरूप/ब्रह्मस्वरूप होते हैं अत: वे ब्रह्मज्ञानी ही होते हैं।

'**ब्रह्ममूर्ति संत जगी अवतरे। उद्धराया आले दीन जनी।।**' अर्थात् इस संसार में ब्रह्मस्वरूप संत लोगों का उद्धार करने के लिए अवतीर्ण होते हैं। सच्चे संत अपने आत्मस्वरूप में भी मग्न रहते हैं। संतजन सभी को कल्याण का रास्ता दिखलाते हैं। समदृष्टि वाले संत निर्मोही, निरिच्छ, निर्द्वन्द्व और अभिमान/अहंकार रहित होते हैं। भक्ति मार्ग पर चलने वाले ऐसे अनासक्त, निष्काम पुरुष ही 'संत' कहलाने के अधिकारी होते हैं। समर्थ रामदास स्वामीजी कहते हैं, 'संत आनंद के स्थान और केवल सुख ही सुख होते हैं। संत समाधि के मंदिर होते हैं। संत विवेक के भंडार होते हैं। संत मानो घूमते-फिरते देव ही होते हैं।'' संतों में आत्मज्ञान एवं परोपकार नामक दो गुण होते हैं। संत उदार एवं शांत स्वभाव वाले होते हैं। संत सब का कल्याण चाहने वाले हैं- '**सर्वभूतहिते रत:**।' संतजन गृहस्थी और परमार्थ का, विज्ञान और आत्मज्ञान का योग्य मेल कराने वाले होते हैं। संत मानो सगुण-साकार परमात्मा होते हैं। जिन के दर्शन करने से सामान्यजनों को आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

ऐसे सच्चे संतों के दर्शन करने से महाकवि सामी भी धन्य हो जाते हैं। आत्मिक संपत्ति प्राप्त कर अलौकिक आनंद एवं सुख प्राप्त करते हैं।

कबीर शीतल जल नहीं, हिम ना शीतल होय।
कबीर शीतल संतजन, राम सनेही सोय।।

■

हज़ारनि जी हिक, ॻाल्हि बुधाई सतिगुरूअ
खालिकु वसे खलिक में, खलिक मंझि खालिक
पेही ॾिसु परितीत सां, सामी रखी सिक,
कोहु चटीं थो चिक, दरि दरि देवाननि जां.

सामी साहब कहते हैं कि सतगुरु ने लाख मोल की एक बात बतायी। उन्होंने कहा कि परमेश्वर लोक (सामान्यजन, जनता) में निवास करते हैं और जन परमेश्वर में निवास करते हैं। हे मनुष्य! यह तथ्य तुम अपने भीतर झाँक कर अनुभव करो। यह काम मन में प्रेम धारण कर करने से तुम भीतर ही परमेश्वर को पा सकोगे। तुम क्यों परमेश्वर को बाहर ढूंढने के लिए दर दर भटकते रहते हो?

मनुष्य को अपने जीवन में बहुधा सभी बातें सीखनी पड़ती हैं। किसी विद्या, कला या शास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। विज्ञान का भी तंत्र आदि सीखना पड़ता है। इन सबके लिए किसी अध्यापक ज्ञाता अथवा गुरु आदि की आवश्यकता होती है। आत्मज्ञान, अंतर्ज्ञान अथवा परमेश्वर के दर्शन करने के लिए सद्गुरु से दीक्षा, गुरु-मंत्र लेना पड़ता है। ब्रह्मज्ञानी सतगुरु हमारे मार्गदर्शक बनते हैं। उनकी कृपा और उपदेश आदि द्वारा शिष्य का अज्ञान सतगुरु ही अपने शिष्य को अपने बोध-वचनों द्वारा यह समझाते हैं कि परमेश्वर सृष्टि का निर्माता एवं नियंता है। वह सर्वेश्वर है, सृष्टि के कण-कण में परमेश्वर का निवास है। वह घट-घट वासी है। जिस प्रकार परमेश्वर सारे विश्व में व्याप्त है, उसी प्रकार सारा विश्व परमेश्वर में व्याप्त है। परमेश्वर जिस प्रकार लोक में सभी प्राणियों/मनुष्यों में निवास करते हैं, उसी प्रकार सभी प्राणि मात्र, जन आदि भी परमेश्वर में निवास करते हैं।

यह अनमोल बात, आत्मा-परमात्मा की एकरूपता का रहस्य सतगुरु ही शिष्य को बतलाते हैं। सामी साहब भी सतगुरु की बात समझाते हैं। करुणा के सागर सतगुरु शिष्य एवं सामान्य जनों को अध्यात्म-उपदेश का अमृत पान कराते हैं। परमेश्वर को अपने मन में ही देखने और पाने की बात करते हैं। परमेश्वर की प्राप्ति एवं दर्शन मन-मंदिर में मिल सकते हैं। अत: बाहर ढूँढने/भटकने की आवश्यकता नहीं है। आत्मस्वरूप सच्चिदानंद ही विश्व का आधार है। वह हमारे भीतर बसा हुआ है। उसे पहचानो ।

कस्तुरी तन में बसै, मृग ढूँढै बन मांहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं ।।

■

हरिजन कढी हटु, वेठा सौदे सार जो,
सम रखियाऊँ साहिमी, सम रखियाऊँ वटु,
वठे को वेसाह सां, नेही निह कपटु,
परमेसरु परघटु, सुतह ड्सिे सामी चए.

सामीजी सच्चे संतों/भक्तों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हरि (परमेश्वर) के भक्त अर्थात् संतजन दुकान खोल कर बैठे हैं, जहाँ पर वे सत्य का सौदा/व्यापार कर रहे हैं। गाहक को 'सत्य-वस्तु' तौल कर देने के लिए उनके पास समता रूपी तराजू और बाट (बट्ट/तौल) हैं। संतों से वही प्रेमी मनुष्य विश्वास के साथ वस्तु/ माल लेता है, जो निष्कपट है। ऐसा मनुष्य वस्तु खरीदने के उपरांत तुरंत ही अपने सामने परमेश्वर को प्रकट रूप में पाता है।

हमारी संस्कृति उन्नत बनाने में संतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वधर्म और भक्ति-रस को महत्व देने वाले संत समाज के परम हितैषी रहे हैं संतों ने अपने सत्याचरण द्वारा समाज-हित साधने का प्रयास किया है। उन्होंने इस सत्य से अवगत कराया है कि आत्मोद्वार अथवा मुक्ति ही मनुष्य जाति का अंतिम उद्देश्य है। परोपकारी संतों को अपनी देह की अपेक्षा संसार के लोगों की, उनके आंतरिक जीवन को सुधारने-सँवारने की चिंता अधिक होती है। समर्थ रामदास जी के शब्दो में, '**चिंता करितो विश्वाची।**' जीवन सार्थक एवं सफल करने के लिए ईश्वर-नाम-स्मरण रूपी अनमोल औषधि समाज को प्रदान की है। "**नानक, नाम जहाज है, चढै सो उतरे पार।**" केवल प्रभु का स्मरण करने से भी भवसागर पार किया जा सकता है। "**सच्चिदानंद धन। नाम त्याचे अधिष्ठान।**" "दास म्हणे नाम । जिन कैवल्याचे धाम। (ब्रह्म चैतन्य गाथा)

सामी साहब भी सच्चे संतों के परोपकार भाव का वर्णन करने के लिए एक रूपक का प्रयोग करते हैं । संतों ने परम सत्य वस्तु को बेचने के लिए (प्रचार-प्रसार करने के लिए) दुकान खोल ली है। वे आत्मज्ञान, नाम, दीक्षा देने का सौदा कर रहे हैं। इस व्यापार में समता/समानता रूपी तराजू और बाट रख लिए हैं। बिना किसी भेद-भाव के वे सब को अंतर्ज्ञान, परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग और मोक्ष-मुक्ति का रहस्य बतलाते हैं। वे जीव और ब्रह्म की एकता रूपी वस्तु का सौदा कर रहे हैं। यह वस्तु कोई भी खरीद सकता है। केवल एक शर्त है, प्रभु की प्राप्ति की इच्छा रखने वाला निष्कपट, प्रेमी और श्रद्धावान होना चाहिए।

■

हीरो जननु हारे, मूरख वेहु म मति रे,
मिली वठु महबूब सां, साझुरि संभारे,
कालु तुंहिंजे कंध ते, थो पलि पलि पुकारे,
मिटी कया मारे, सामी चए जंहिं सूरिमा.

सामी साहब कहते हैं, ‘‘हे अज्ञानी मनुष्य! तुम अपना हीरे जैसा मूल्यवान जन्म व्यर्थ मत गँवाना। तुम शीघ्र ही संभल कर प्रियतम परमेश्वर से मिलने का जतन (यत्न) करो। अरे, काल (मृत्यु) तुम्हारे कंधे पर आ बैठा है, जो प्रति पल पुकार रहा है। हे मूर्ख! काल ने बड़े-बड़े वीरों को मारकर मिट्टी में मिला दिया है। भला तुम्हारी क्या हस्ती है?

मनुष्य-देह प्राप्त भाग्य का चिह्न माना जाता है। सभी जन्मों से मनुष्य-जन्म श्रेष्ठ है। भगवान के दर्शन, मोक्ष-मुक्ति इसी नर-देह द्वारा ही संभव है। बड़े-बड़े संत-महंत, ऋषि-मुनि, साधु, योगी, तत्त्वज्ञानी, भक्त आदि इसी नर-देह द्वारा अपने-अपने कार्य एवं उद्देश्य की पूर्ति कर सके हैं। अत: मनुष्य-जन्म हीरे जैसा अनमोल माना गया है। साधु संतों एवं शास्त्रों का कहना है कि इस जन्म में ईश्वर का नाम जप कर, भक्ति कर हीरे जैसा अपना जन्म सार्थक सफल करना चाहिए।

वस्तुत: जब से जीव (मनुष्य) भगवान से अलग हुआ है, तभी से उसने अपने शरीर को अपना घर मान लिया है। माया के वश होकर उसने अपने ‘सच्चिदानंद’ स्वरूप को भुला दिया है और इसी भ्रम के कारण उसे दारुण दु:ख भोगने पड़ रहे हैं। मूर्ख मनुष्य ‘यह घर मेरा’ ‘यह धन मेरा’ कहते हैं हुए ‘मैं’ पन के जाल में फँस गया है। वह कभी नहीं सोचता कि एक न एक दिन यह सब यहीं छोड़ कर मुझे ऊपर चले जाना है। काल/मृत्यु/यमराज किसी को नहीं छोड़ता। उसके चँगुल से कोई छूट नहीं पाया है।

इसलिए सामी साहब अज्ञानी जीव को तुरंत जाग जाने के लिए कहते हैं कि अभी भी समय है, परमेश्वर का भजन-स्मरण कर अपना जीवन सार्थक बनाने का प्रयत्न करो। पहले अपने अंदर बैठे हुए परमात्मा को पहचानो। परमार्थ या भक्ति उस आत्मस्वरूप तक पहुँचने का उत्तम मार्ग है। इस मार्ग से आगे बढ़ने पर तुम्हें परम सत्य की प्राप्ति हो सकती है। फलत: जन्म-मृत्यु के कुचक्र से तुम मुक्ति पा सकोगे।

काल फिरै ऊपरै , हाथों धरी कमान।
कहै कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकल अभिमान ।।

■

होरी खेलनि संत, सामी सारंगधर सां,
लाए रंगु रहति जो, ग॒ाइनि अनभइ छंत,
माधो ऐं ऊधो मिली, पसनि महबती महंत,
पुछनि अलेपु अचिंत, वाटां सुख सरूप जूं.

महाकवि सामीजी एक आध्यात्मिक दृश्य का शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि संतजन शारंगधर (श्रीकृष्ण भगवान) के साथ होली खेल रहे हैं। वे अपनी सूधी (सीधी, सरल, ऋजु) चाल (आचरण) रूप रंग लगा कर ईश्वरीय ज्ञान की अनुभूति के छंद गा रहे हैं। माधव (श्रीकृष्ण) और उद्धव मिल कर ऐसे प्रेमी संत-महंतों को देख रहे हैं, जो निश्चिंत, निर्लिप्त होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) के सुख के मार्ग पूछ रहे हैं।

रंगों का त्यौहार है होली। आनंद का उत्सव है होली। मुक्त-मन का नृत्य है होली! होली उमंग और उल्लांस का सुंदर उत्सव है। संतजन भी होली खेलते हैं- अपने शिष्यों के साथ और परमेश्वर के साथ भी शारंगधर/श्रीविष्णु भगवान के साथ होली खेलते समय संत-जन प्रेम के रंग में रंग जाते हैं। लाल गुलाल से लाल हो जाते हैं। पिचकारियों के रंगों से सराबोर हो जाते हैं, आनंदमय बन जाते हैं, जिन्होंने हृदय में प्रभु के दर्शन किये हैं, उन संतों को ही अलौकिक आनंद मनाने का अवसर मिलता है।

सामी साहब ऐसे ही परम आनंदमय प्रसंग का वर्णन करते हैं, जहाँ सच्चे संत, साक्षात्कारी संत भगवान श्रीकृष्ण के साथ मिलकर होली खेल रहे हैं, आनंदोत्सव मना रहे हैं। भगवान और भक्तों की यह होली मानो सायुज्य भक्ति का चित्रण है। अभेद आनंद के साथ मिलकर एक हो जाना सायुज्य है जहाँ जीव की आत्मा ब्रह्म परमात्मा से मिल कर एक हो जाती है। सामीजी द्वारा वर्णित इस दृश्य में भगवान अपने भक्तों के साथ मिलकर होली खेल रहे हैं। श्रीकृष्ण एवं उनके प्रिय मित्र/भक्त उद्धव मिलकर प्यारे संत-महंतों एवं प्रेमीजनों को प्रेम से देख रहे हैं। सभी संत जन निर्लेप निश्चिंत होकर परमेश्वर के सुख का मार्ग पूछ रहे हैं कि अधिक ब्रह्मानंद कैसे प्राप्त हो सकेगा? शुद्ध भक्ति करते हुए सच्चा साधक सहज समाधि द्वारा सत्यलोक का सुख और आनंद भी अनुभव कर सकता है, जिस में परम पुरुष द्वारा जीवरूपी प्रियतमा से होली खेल रहा है, आनंदोत्सव मना रहा है। दोनों एक दूसरे के मिलन का आनंद अनुभव करते रहते हैं।

■

सामीजी के कतिपय श्लोकों का हिन्दी शब्दानुवाद

(1)	(1)
अविद्या जो अभिमानु, मिटे न किरति कर्म सां,	अविद्या का अभिमान, मिटै न किसी कर्म से,
तोड़े सभि साधन करे, कथे केवल ग्यानु,	चाहे सब साधन करै, कथै केवल ग्यान,
तड॒ी थिए निरब॒ाणु, जड॒ी सामी जुड़े सरुप सां.	तब होवै निर्वाण, जब सामी मिलै सरुप से।

* * *

(2)	(2)
पेट कयो पाजी, सामी सब जहान खे,	करै पेट पाजी, सामी सब जहान को,
विरले कंहिं गुरुमुख जी, मिटी मोथाजी,	बिरले किसी गुरुमुख की, मिटी मोहताजी,
सही कई जंहिं सम थी, सुपने जी बाजी,	जानी जिसने सम होकर, सपने की बाजी,
रजा में राजी, रहे सदाई राम जे.	रजा में राज़ी, रहे सदा ही राम की।

* * *

(3)	(3)
छह अठारहं चारि, ग॒ाल्हि चवनि था हिकिड़ी,	छह अठारह चार, बात कहे हैं एक ही,
दरि-दरि देवाननि जां, नाहकु कीम निहारि,	दर दर दीवानों की तरह, नाहक मत निहार,
मिली साधि संगति सां, बेहदि ड॒ीओ बारि,	मिल साध संगत से, बेहद दीपक बार
त बीठे मंझि बजारि, सामी ड॒िसें, सुपिरी.	तो खड़ा हो बाजार, सामी देखें प्रीतम के।।

* * *

(4)	(4)
सदाई सीतलु, रहनि संत सुभाव में	सदा ही सीतल, रहैं संत स्वभाव में
तपनि खपनि कीनकी, ड॒िसी माया छलु,	तपै खपै ना कभी देख माया-छल,
सामी खाइनि खुशि थी, ब॒ोध बिरछ फलु,	सामी खावैं खुश हो, बोधि-वृक्ष फल
अठई पहर अचलु, सामी ड॒िसनि सभ में	आगे प्रहर अचल, सामी देखें सब में।

* * *

(5)	(5)
कुसंगु छड॒ाए, सोई साधू सतिगुरू	कुसंग छुड़ावै, वही साधु सतगुरु,
ड॒ेई गुण हरि भग॒ति जा, औगुण मिटाए	दे गुण हरि-भक्ति का, अवगुण मिटावै,
अंतरमुखि जोड़े करे, अविद्या पटु लाहे,	अंतर्मुख जोड़कर, अविद्या-पट हटावै,
सामी लखाए, आत्म-पदु अखिनि सां.	सामी लखावै, आतम-पद अखियन से।

(6)	(6)
अनन उपकारी , साधू जन संसार में,	अनन्य उपकारी, साधु जन संसार में,
ॾेई धीर धरम जी, ममता जनि मारी,	दे धीरज धरम का, ममता जिन मारी,
सारी विसु तारी, जोड़े जहाजु भॻति जो.	सारी दुनिया तारी, दे जहाज भक्ति का।

~~~~~~~~~~

(7)	(7)
नको आरु न पारु, सुपेरियां जे सिक जो,	कोई आर न पार, प्रियतम के प्रेम का,
सुंवातीअ बिनां सिप खे, अचे कीन करारु,	स्वाति बिन सीपी को, आवे न करार,
मछीअ जे मन में बसे, पाणी पिरान अधारु,	मीन के मन में बसै, पानी प्रान-आधार,
सामी सिरजणहारु, पलक पराहों न थिए.	सामी सिरजनहार, पलकों से परे नहीं।

~~~~~~~~~~

(8)	(8)
सामी सभु दीदारु, अथी अजीबनि जो,	सामी सब दीदार, है ईश्वर अजीब का,
ॾिसे बुंधे पाण थो, ॿोले ॿोलण हारु,	देखै सुनै आप ही बौले बोलनहार,
निराकारु आकारु, धारे आयो जग में,	निराकार आकार, लेकर आया जग में।

~~~~~~~~~~

(9)	(9)
सभ खे नचाए, थो अविद्या भूतु भरम जो,	सबको नचावै, अविद्या-भूत भरम रे,
बिना फाहीअ फंद जे, थो पलि पलि पिटाए,	बिन फाँसी फँद रे, पल-पल कुटावै,
मंतरु न मने कंहिंजो, रहिया ॿली ॿलु लाहे,	मंतर न चले किसी का, हारे बली बल लावै,
सत्गुरु छॾाए, त सामी छुटे दुख खों.	सतगुरु छुड़ावै, छूटे तब सामी दुख से।

~~~~~~~~~~

(10)	(10)
वेद पुरान कुरान कवी, सभिनी में हिकु सूतु	वेद पुरान कुरान कवि, सब में बस एक सूत,
समुझी ॾिसु सामी चए, लाए मनु मजिबूतु,	समझो सामी कहे, लगाकर मन मजबूत
जिअं आकासु घटनि में, तिअं सभ में साखी भूतु,	जैसा आकाश घटाओं में, वैसे सब में साक्षीभूत,
को आतम रत अवधूतु, समुझे हिन सुखिन खे.	कोई आत्म-रत अवधूत, समझे इस वचन को।

◆ ◆ ◆